

आचार्य श्री तुलसी ब्रवल मनागेट्ट के अभिनन्दन ने

नैतिक संजीवन

प्रथम भाग

आचार्य श्री तुलसी

मन्यादक

मुनिश्री महेन्द्रकुमारजी 'प्रथम'

प्रबन्ध मन्यादक

श्री सोहनलाल बाफरणा

उपमजी, अणुब्रत सन्निधि, दिल्ली

आत्माराम एण्ड संस

दिल्ली ० जालन्धर ० जयपुर ० मेरठ

NAITIK SANJEEWAN

by

Acharya Shri Tulsi

Rs. 2 00

[श्री श्रीन शिवेश्वर तेषपत्नी महामा कवकता के सीबन्ध से प्राप्त]

प्रकाशक

राज्यास पुरी सचलक

धारमाराम एण्ड सस

काश्मीरी गेट दिल्ली

बीडा रास्ता जयपुर

माई हीरा गेट जालन्धर

बंगमपुल रांड मेरठ-

भाबरण

श्रीश्रीकुमार नरसा

कृत्य

एन २

मुद्रक

श्रीश्री प्रेस

बम्बई बाजार

आशीर्वचन

अन्त करण से स्फूर्त भावनाएँ ही साहित्य का रूप लेती हैं। नैतिक ऊर्ध्व मंचार के लिए जो एक मयम-प्रधान आचार-सहिता प्रस्तुत की गई, उसे लोगो ने अणुव्रत-आन्दोलन कहा और उसी उद्देश्य से जो प्रेरक विचार में देता रहा, वह नैतिक सजीवन बनाया जा रहा है। मैं मानता हूँ कि यह सब वस्तु-वैशिष्ट्य का नहीं, किन्तु पात्र-परिणति का परिणाम है। मेघ के पानी में स्वच्छता उमकी अपनी है, पर मुक्ता-परिणमन सूक्ति सम्पुट की अपनी पात्रता का फल है। मैंने कोई अनोखे विचार अपने भाषण में दिये हों ऐसी बात नहीं। ये वही विचार थे जो भारतवर्ष के लोग अपने युगपुरुषों से समय-समय पर सुनते रहे हैं। उन्हें नैतिक सजीवन मानकर अपना उनका आध्यात्मिक उर्वरता का द्योतक है।

मुनि महेन्द्रकुमार 'प्रथम' अपनी हार्दिक लगन से उन विचारों के सकलन और सम्पादन में लगा है, यह उसकी कर्तव्यपरायणता है। हर श्रेयोभिमुख प्रयत्न की मैं सफलता चाहता हूँ।

स० २०१७ माघ शुक्ल २ }
आमेठ (राज०)

आचार्य तुलसी

सम्पादकीय

वर्णमाला के वर्ण परिमित है, पर कलाकार सयोजक उनमें अपरिमित भाव सजो देता है। आचार्य श्री का प्रत्येक प्रवचन इस सत्य का सुन्दर उदाहरण बनता है। वे प्रवचन उन्होंने ग्रामीणों और श्रमिकों में भी दिये तथा ससद् सदस्यों और विश्वविद्यालयों के प्राध्यापकों में भी दिये। पात्र-भेद के कारण भाषणों के स्तर में विविधता का आना स्वाभाविक और आवश्यक था, परन्तु किसी भी भाषण में अर्थ-गरिमा ज्यों की त्यों सुरक्षित रही है।

भाव, भाषा और शैली से भी उच्चतर महत्त्व इन प्रवचनों में इनके पीछे रही आचार्य श्री तुलसी की सुदीर्घ तप साधना का है और वही उन्हें श्रद्धावन्त जन-मानस का अमर पाथेय बनाती है। सम्भव है, आज का एक पट्ट साहित्यकार महावीर और बुद्ध जैसी ही प्रशस्त भाव भाषा में आध्यात्मिक उपदेशों को कह जाये, पर जन-मानस पर जो प्रभाव उनकी तप सिद्ध वाणी का पड़ेगा, वह साहित्यकार के कलापूर्ण शब्द-विन्यास का नहीं।

आचार्य श्री के प्रवचनों में एक ओर विशुद्ध अव्यात्म का विलोडन है तो दूसरी ओर सामयिक समस्याओं का समाधान। विनाशक अस्त्र-शस्त्रों के निर्माण व सैनिक शक्तियों के संगठन से ही विश्व-शान्ति का स्वप्न देखने वालों के प्रति एक सात्त्विक प्रेरणा के रूप में वर्तमान स्थितियों का चित्र प्रस्तुत करते हुए आचार्य श्री तुलसी कहते हैं—सैनिक शक्ति और आणविक अस्त्रों की वृद्धि के उपरान्त भी भय घटा नहीं, प्रत्युत बढ़ा और मानव जाति के प्रलय की कल्पना स्पष्ट हुई। तब उन लोगों को भी, जो एकमात्र शस्त्र में विश्वास करते थे, यह अनुभव हुआ है कि विवादों के अन्त का यह सही मार्ग नहीं है। पारस्परिक सौहार्द, विश्वास,

माईबाप सामीप्य और एक दूसरे की नीति एवं कार्यकर्म्मों का सम्मान करने से ही समस्माओं का समाज हो सकता है। इस पद्धति के द्वारा ही मनुष्य मनुष्य की मति हो सकता है। एक शब्द में यही कि भावेय पूर्ण प्रकृति बट रही है। समझौता नीति विकसित हो रही है।

समाजवादी समाज-व्यवस्था व चारित्रिक व्यवस्था दोनों एक दूसरी से कितनी अपेक्षित है, इस विषय पर अपने एक प्रबचन में मैं कहते हैं— इसमें कोई सन्देह नहीं कि धर्म-व्यवस्था दोषपूर्ण होती है। तब समाज में विकार बढते हैं। धर्म-व्यवस्था का परिवर्तन एक राष्ट्रीय प्रश्न है। राष्ट्रीय नेताओं के सामने अभी समाजवादी समाज की स्थापना का लक्ष्य है। अणुघट-मान्दोशन का मन्त्र है—चरित्रवान् समाज का निर्माण। धर्म-व्यवस्था सुखर बिना चरित्रवान् बनने में कठिनाई होती है तो चरित्रवान् बने बिना समाजवादी समाज बने यह भी सम्भव नहीं है।

तथाकथित धार्मिकों को जो केवल धर्म की रट ही चलाते हैं, उसे जीवन में नहीं उतारते कुलीटी की भांदा में कहते हैं—धर्म का वैज्ञानिक दृष्टि सिद्धान्त की अपेक्षा प्रयोग में अधिक विश्वास करता है। धार्मिक लोग प्रयत्न कम करते हैं और सिद्धान्तों को अधिक बोलते हैं। किन्तु धर्म का भीतिनकार धर्म्यात्म को कुलीटी से रहा है। उसे वे क्यों नहीं देखते। क्या वे धनीति असाधारण और धर्म को एक साधन समझते रहेंगे? धर्म प्रदान देण में अनैतिकता क्यों? इस प्रश्न का समाधान किये बिना क्या धार्मिक लोग धर्म को धार्मिकता का केन्द्र-किन्तु बनाए रख सकेंगे? धर्म से कृतियों का परिपार्जन नहीं होता तो उसकी उपासना से और क्या मिल सकता है?

बहुधा व्यक्ति धार्मिक को सुख-सुविधाओं में खोजता है। वह यह मानकर चलता है कि धर्म में शांति नहीं मिल सकती। किन्तु धार्मिक भी इस धारणा के विकृत हैं। उनका कहना है—यही सुख-सुविधा फिर धार्मिक—ऐसा बनता है पर स्थिति ऐसी नहीं है। सुख सुविधा का प्रायस्वकता की पूर्ति जीवन-निर्वाह का सर्वोपरि ध्यान धारण है पर

शान्ति की पहली मजिल भी नहीं है। सुख-सुविधा की सामग्री के परम-भाव में भी बहुत सारे शान्ति के लिये मारे-मारे फिरते हैं। उनके अभाव में प्रताडित व्यक्ति भी शान्ति प्राप्त किये हुए हैं। इस पर से यह निकलता है कि सुख-सुविधा और शान्ति में आपस में कोई लगाव नहीं है, पौर्वापर्य या साहचर्य नहीं है। सुख-सुविधा होने पर भी शान्ति हो, ऐसी व्याप्ति या नियम भी नहीं है। इसलिए जीवन-निर्वाह या सुख-सुविधा की समस्या के समाधान के साथ शान्ति के प्रश्न को नहीं जोड़ना चाहिये। उस पर स्वतन्त्र दृष्टि से विचार होना चाहिये।

सुख को पदार्थ-सापेक्ष मानना भूल है। वह यदि अभाव में नहीं होता तो पदार्थों के अतिभाव में भी नहीं होता। वह तो आत्मा का स्वभाव है। आचार्य श्री तुलसी इन्हीं धारणा को तर्क का आधार प्रदान करते हुए कहते हैं—सुख का हेतु अभाव भी नहीं है और अतिभाव भी नहीं है। सुख का हेतु स्वभाव है। मनुष्य अपने स्वभाव से जितना दूर हटता है, उतना ही अतिभाव—पदार्थ का अतिसंग्रह करने लगता है। पदार्थ से दूर हटने का मतलब है, स्वभाव की ओर गति। स्वयंकृत अभाव में स्वभाव का दर्शन निकट से होता है। अभाव विवशता से होता है। वह दुःख देता है। पदार्थ का अभाव हो, यह कोई कैसे चाहेगा? अतिभाव की चाह होती है, पर वह करनी नहीं चाहिये। यथाभाव की क्षमता समाज-व्यवस्था में है। जो नहीं होना चाहिये, उसके निवारण की क्षमता त्याग व व्रत में है। अस्पृश्यता का सन्देश यही है—जो नहीं होना चाहिए उससे दूर रहो। यह व्यवस्थाओं की स्वयं स्फूर्त व्यवस्था है। सुख का हेतु अहिंसा या मैत्री है। उसका आधार अनपहरण है। जो व्यक्ति दूसरों के स्व का कभी हरण नहीं करता, वह सबका मित्र है। सुख की दृष्टि बाहरी पदार्थों से बंधी हुई है, यह मानना भूल है। इससे मानसिक असमाधि बढ़ती है।

आज का मनुष्य इतना बुरा क्यों हो गया, यह एक प्रश्न बहुधा सामने आता है। उत्तर भी स्पष्ट है कि मनुष्य एक साथ कभी बुरा नहीं

हुमा करता । उसमें असत् शब्द है तो सत् शब्द भी काफी मात्रा में विद्यमान है । उसका जो असत् है वह बाह्य भाव है और सत् उसका निजी स्वस्व । कई बार जब उसमें यह या स्वार्थ जागृत होता है सत् पर असत् छा जाता है और बुराहमा बहने लगती है । असत् मनुष्य का बाह्य भाव है अतः वह बुरा भी एक साथ नहीं बनता । उसका भी क्रम होता है । इस विषय में आचार्य श्री का कहना है—दुरार्थ श्री एक साथ नहीं आ पाती । उसका भी अस्वाद्य क्रम होता है । पहले पहल दुरार्थ करने बूणा होती है दूसरी बार सुकोच तीसरी बार नि सुकोचता आ पाती है और चौथी बार में साहस बढ जाता है । फिर तो पाप का अस्वाद्य हो जाता है । अस्वस्त्य व्यक्ति का त्याग सुलभ नहीं होता । इसलिए अज्ञान का सङ्घ प्रबल नहीं होता ।

जब एक व्यक्ति बल-बहुल करते ही अपने आप में पूर्णता का अनुभव करने लगते हैं किन्तु उनका यह मानना भ्रान्त है । वे व्यक्ति अपने कामकर स्वामित्व भी हो जाते हैं । बल क्या है और उन्हे कमी ग्रहण करना चाहिये इस विषय पर आचार्य श्री कहते हैं—बल साम्य नहीं है । साम्य है—आत्मिक परिश्रम की कृति । बल उसके सामन्य है । सामन्य को अपनाकर निश्चिन्त हो जाना उचित नहीं है । वे अपने बहने की प्रेरक पठाकाए है यतिगोच के स्वस्व नहीं । प्रती जो बने या बनते हैं वे किफें बाह्यी स्थितियों से दूर और परार्थ से सपत्त हो न हो वे आन्तरिक वासनाओं से भी दूर रहने का अस्वाद्य बर्दाए । ऐसा हुए बिना त्याग व बल का अवेष्ट परिश्रम नहीं आता । इतर स्वाम हो जाता है और उतर वासनाओं का भिन्न नहीं होता बँधी हानत में वे आपत्तिर वा अस्वाद्यदुते प्रकट होती है । फिर त्याग में यतिवा निकलती है, यह वाञ्छनीय नहीं ।

आचार्यप्रवर की वक्तृत्व शैली स्वतन्त्रिष्ठ है । आचार्यवस्त्रा से पूर्व ही इसने आपको बहुत पीरबान्धित किया था । वैराग्य के अष्टमाचार्य श्री कानूचरुती के सम्बुद्ध प्रमुञ्जतना आप ही आख्यानवाता रहे हैं । २२ वर्ष की अवस्था में आप आचार्य बन गए । तब से तो आपकी

वक्तृत्व शैली ही योग्य आचार्य की परिचायक बन गई। एक बार आपका व्याख्यान सुन लेने वालों के हृदय में अल्प वयस्कता और आचार्य पद सम्बन्धी प्रश्न शान्त हो जाते और आपकी वक्तृत्व शैली देवी सपद बन जाती है। क्रमशः प्रभावित जनता के उद्गार प्रस्तावों में बदलने लगे। चारों ओर से सुभाव आने लगे—इन अमूल्य भाषणों का यथासमय सकलन क्यों नहीं कर लिया जाता। वही लोक-भावना कार्यरूप में परिणत हुई। नाना सस्थाओं ने इस ओर ध्यान दिया। नाना साधु इस कार्य में जुटे। इन सबमें एक मैं भी था। भाषण सगृहीत होने लगे और नाना पत्र-पत्रिकाएँ उनका उपयोग करने लगीं। प्रवचनों के अनेकों पुस्तकाकार सकलन भी बने और बनते जा रहे हैं। क्रमिक विकास के इस इतिहास में नैतिक सजीवन एक नया अध्याय है।

सात खण्डों में सोचे गए इस प्रवचन संग्रह की भूमिका आगामी वर्ष का तुलसी घवल समारोह है। आचार्यवर के कलकत्ता चातुर्मास (वि० सवत् २०१६) में मुनि श्री नगराजजी व साहित्यचेतना शुभकरराजजी दशानी के बीच आचार्य पदारोहण के पच्चीस वर्ष पूरा होने के उपलक्ष्य में सभाव्यमान तुलसी घवल समारोह के विषय में चिन्तन चला। अन्यान्य कार्यक्रमों के साथ आचार्यवर की कृतियाँ तथा भाषणों का सम्यग् सम्पादन तथा ऐतिहासिक यात्राओं का लेखन अपेक्षित माना गया। आचार्यवर का आशीर्वाद पाकर मैं इस कार्य में जुटा। नैतिक सजीवन के प्रथम खण्ड का सम्पादन मेरे लिए हर्ष का विषय है कि मैं अपने लक्ष्य की ओर एक ढग भर सका।

प्रस्तुत प्रथम भाग में अणुव्रत-आन्दोलन के वार्षिक अधिवेशनों में आचार्यप्रवर द्वारा प्रदत्त मंगलप्रवचन व दीक्षान्त प्रवचन है। इनके साथ-साथ कुछ विशेष सन्देश व प्रवचन भी हैं, जो समय-समय पर अणुव्रत प्रेरणा दिवस व अन्य विशिष्ट अवसरों पर प्रदान किये गए हैं। इन प्रवचनों में आन्दोलन की दार्शनिक पृष्ठभूमि व उससे सम्बन्धित अनेकों प्रश्नों का सुन्दर समाधान है। इनमें से कुछ विशेष प्रवचन मुनि श्री

मध्यमकी द्वारा संवृष्ट है। सेव प्रवचन नामा हाथों से संकलित हुए हैं। उन्हें बहुत ध्यान से देखना पड़ा है तथा मनेकालेक स्वर्णों पर संसोधन व भाषा का परिमार्जन भी किया गया। इस सत्रह में सातवें अधिवेशन का प्रवचन तो उपलब्ध ही नहीं हो पाया है। कुछ प्रवचन अति संक्षिप्त हैं और कुछ विस्तृत। सम्पन्निक खोज करने पर भी कुछ प्रवचनों की विविधा भी प्राप्त न हो सकी है। अतः उन्हें इसी तरह देना पड़ा है। विचारों की पुनरावृत्ति न हो इसके लिए सावधानी बरती गई है। फिर भी कहीं-कहीं असंगत भावस्वरूप समझकर उस पुनरावृत्ति को भी रहने दिया गया है।

प्रस्तुत कार्य में मुनि श्री नारायणजी का सतत मार्ग-दर्शन मुझ मिलता रहा है और उसी का परिणाम है कि यह कुछ बन पाया है। प्रस्तुत पुस्तक में सम्पादन का जो कुछ भी संश्लेष है, वह मेरा नहीं अपितु मुनि श्री के मार्ग-दर्शन का ही है। पाठक यदि इस सत्रह से कुछ भी अपोमिमुख होने तो मैं अपने मन को सफल समझूँगा।

जून १९५१
 कठीतिना भवन
 सक्कीमण्डी दिल्ली

—मुनि महेंद्रकुमार प्रबस'

अनुक्रम

१	धर्म का पहला सोपान	१
२	कर्तव्य की पूर्ति के लिए नया मोड़	४
३	पाँच साधनों की साधना	८
४	आचार महिमा की आवश्यकता	१०
५	सादगी व सरलता निवचनता की पराकाष्ठा नहीं	१३
६	व्रत और अनुशासन	१६
७	अशान्ति की चिन्तनगरिया	१६
८	व्रत साध्य नहीं, साधन	२३
९	आन्दोलन का घोष	
१०	दुःख-मुक्ति का उपाय	
११	आत्म-दमन	
१२	दुविधाओं से पराभूत न हो	
१३	आर्थिक दृष्टि के दुष्परिणाम	
१४	वार्षिक पर्यवेक्षण	
१५	जीवन का मोह और मृत्यु का भय	
१६	धर्म का मूल मन्त्र	
१७	सच्ची सेवा	
१८	अणुव्रतों की दार्शनिक पृष्ठभूमि	
१९	व्रतों का प्रयोग	
२०	नैतिक निर्माण का आन्दोलन	
२१	सुख और शान्ति का मूल समय	
२२	व्रत का जीवन में महत्त्व	
२३	अणुव्रत प्रतिस्वीत का मार्ग	

२४	अधुन की आचारधरमा	१
२५	अधुन-वहमा मे दो आचार	१४
२६	अधुन का मार्ग	१५
२७	अधुन क्या बेला है ?	११३
२	अधुन का महत्त्व	११६
३१	अधुन भारतीय अरुधर का प्रतीक	१२१
३	अधुन एक रररर सुकर मरर	१२३
३१	अरर परररर का आचार	१२५
३२	अरर के मूल मूल	१२८
३३	अरर अररररर का अरररर ररर	१३२
३५	अरर अरर का नरररर	१३५
३७	अररर अररर-अरररर	१३६
३६	अरर-अरर का अररर	१५१
३७	अरररर के दो परर	१५३
३	अधुन अरर-अरर का अरर	१५६
३१	अरर का अरर मार्ग	१३
५	अरररर और अधुन	१३३

धर्म का पहला सोपान

दुनिया की वार्तमानिक स्थितियों के अध्ययन और विश्लेषण के बाद मैं इस वर्ष पर पहुँचा हूँ कि कोरा ज्ञान भयावह है, कोरा भौतिक विकास प्रलय है नियन्त्रणहीन गति खतरा है। विशुद्ध जीवन की धुँ है दृष्टि। दृष्टि होती है तो ज्ञान शुद्ध होता है, चरित्र शुद्ध होता है। दृष्टि विकृत होनी तो ज्ञान विकृत हो जाता है, चरित्र विकृत बन जाता है। आज का मनुष्य दोष से बुरी तरह ग्रस्त है। अपने को सुसम्य मानने वाले गोरे आदमी आदमियों को जिम घृणा की दृष्टि से देखते हैं, वह क्या दृष्टि-दोष नहीं किसी के प्रति घृणा करने वाला क्या सबके प्रति घृणा नहीं करता ? आ के सस्कार जो बन जाते हैं, वे क्या सीमित ही रहते हैं ? यही तो दृष्टि-दोष है कि मनुष्य घृणा का आरम्भ किसी दूसरे से करता है और वह चलते-चलते अपने तक तथा अपने तक पहुँच जाती है।

अपने को उच्च मानने वाले दूसरो को नीच मानकर उनमें घृणा करते हैं, आ यह दृष्टि-दोष नहीं ? इसके फलस्वरूप होने वाले समाज-विघटन से क्या अपने को बचा सकेंगे ? मनुष्य-मनुष्य के प्रति घृणा करे, इससे बढ़कर और मनुष्यता क्या होगी ?

भाषा, प्रान्त, राष्ट्रीयता, जातीयता और साम्प्रदायिकता का व्यामोह दृष्टि-दोष नहीं तो क्या है ? सुसम्य राष्ट्र अणु-अस्त्रों के स्वार्थों में लगे हुए हैं। किन्तु वे नहीं सोचते कि सुन्द और उपसुन्द लड़ेंगे तो उनमें वचेगा कौन ? जेसके लिए लड़ाई है, उसे कौन भोगेगा ? इस पर दृष्टि नहीं दौडती, क्या यह दृष्टि-दोष नहीं है ? छुट-पुट दृष्टि-दोष कितने हैं, कौन जाने ? पर घृणा, सक्कीरा मनोवृत्ति और पारस्परिक अविश्वास—ये बड़े भयावने दृष्टि-दोष हैं।

इसका परिमार्जन हुए बिना ज्ञान और चरित्र दोनों पवित्र नहीं बनेंगे। प्रसुप्त या शोभन का श्रेय यही है कि दृष्टि-बोध मिले समभाव का विकास हो मनुष्य मनुष्य को निकटता से इन्के धर्म ज्ञानि माया प्राप्त सम्प्रदाय और गण का मैव उनके बीच से न जाए। विचारों को इस पृष्ठभूमि पर पहुँच कर ही प्रसुप्त आत्मोन्नत की आत्मा को पकड़ा जा सकता है। बला का आत्मोन्नत कठिन होता है यह ही मानता हूँ पर साथ-साथ यह ही मानता हूँ कि उस बिना कज्जिाहमा का पार नहीं पाया जा सकता।

माय का दृष्टिभोग प्रेम उदार मनोभाव तथा विश्वास से उत्पन्न विपदा नहीं है। जितना धार्मिक सिद्धान्त से चिन्ता हुआ है। धर्म जीवन की प्रथम आवश्यकता है यह मानते हुए ही यह कौन नहीं मानेगा कि प्रेम प्रथम धार्मिक और विश्वास जीवन की प्रथम आवश्यकताएँ नहीं हैं।

प्रसुप्त-आत्मोन्नत के विचार प्रसार के लिए मैंने कई बड़ी-बड़ी यात्रायें की हैं। जमना में आत्मोन्नत की भावना को समझा है। परन्तु विचार और ज्ञान में जो दूरी रही है वह आज भी है। आत्मोन्नत मान भी आवश्यक है और वह तब तक आवश्यक है जब तक व्यक्ति उन्नत-उन्नत नहीं होता है उसमें स्वशासन का मान जन्म नहीं होता है।

विद्युत् को बर्षों से हमने मिनाबट रिक्वत और मद्य का नियम इस विमूर्खी कार्यक्रम का प्रसारित किया। मद्य न पीने की हजाराँ प्रतिज्ञायें हुईं। मिनाबट न करने और रिक्वत न करने की प्रतिज्ञायें कम हुईं। व्यापारी और राज्य कर्मचारी जब अपनी कज्जिाहमा प्रस्तुत करते हैं तब लक्षता है कि वे मिनाबट न कर रिक्वत न करें तो उनकी दृष्टि कौसे निभे? प्रिन्सु बोले नहूने मैं जाएँ तो स्पष्ट कीयता है कि इस प्रकार एक समस्या को निबटाने के लिए वे अपना धार्मिक समते हैं और अपने लिए उद्योग बड़ी धनेक समस्याओं की दृष्टि कर लेते हैं। यह दृष्टि बोध मिल जाए तो व्यवहार की उद्योगों को विकसित होने में जितना सफल बने ?

भारतीय लोग धर्म और धर्म की गहरी चर्चा करते हैं पर धर्म का पहला मोडान है—व्यवहारिक उद्योग, प्रामाणिकता। वह जीवन में न हो तो धर्म कहाँ से पायेगा कौसे पायेगा? प्रसुप्त का स्वरूप जितना धार्मिक है

उतना ही व्यावहारिक है। धर्माचरण का अमर जितना व्यक्ति पर होता है, उतना ही समाज पर होता है। अनैतिकता को त्याग का जितना अमर व्यक्ति पर होता है उतना ही समाज पर भी होता है, उम्निग वह धार्मिक भी है और व्यावहारिक भी।

भारत धर्म-प्रधान देश कहलाता है, पर व्यावहारिक सच्चाई में यह बहुत पीछे है। भारतीय लोग विदेश-यात्रा में लौटते हुए उन राष्ट्रों की प्रामाणिकता की प्रशंसा करते हैं, जिन्हें भारतवासी भौतिकवादी राष्ट्र मानते हैं। विदेशी लोग जो भारत की यात्रा में आते हैं, उन्हें यहाँ की ऊँची दार्शनिकता के प्रकाश में प्रामाणिकता का अभाव खलता है। इन स्थिति के विक्षेपण से यह जान पाया है कि यहाँ हम जीवन-शुद्धि के लिए नहीं, पुनर्जन्म की शुद्धि के लिए हैं। वे मूल जाने हैं— वर्तमान जीवन शुद्ध नहीं हुआ तो अगला जन्म शुद्ध कैसे होगा? मैं सभी धर्म-प्रमुखों, धर्म-पण्डितों व धर्म-प्रचारकों से अनुग्रह करूँगा कि वे उपासना की अपेक्षा जीवन की सच्चाई को प्राथमिकता दें। इसका परिणाम धर्म-समस्याओं के लिए बहुत श्रेयस्कर होगा और धर्म का माहात्म्य बढ़ेगा।

अगुव्रती जो बने हैं, वह अच्छी बात है। उनकी जीवन-यापन की पद्धति अगुव्रती जीवन के अनुरूप बनी हो, ऐसा पर्याप्त मात्रा में नहीं हुआ है। अगुव्रती मोक्ष, वे जागृत अगुव्रती बनें। अगुव्रतों के स्वीकार से उनमें क्या परिवर्तन आया और उनके अगुव्रती बनने से आन्दोलन का क्या बल मिला, इस पर विचार करें। मही अथ में अगुव्रती बनने में जो कठिनाइयाँ हैं, उनके निवारण का वे प्रयत्न करें। आन्दोलन का प्रसार-काय, जो बहुलाय में साधुओं पर ही छोड़ रखा है, सम्पन्न करने का संकल्प लें। अगुव्रतियों में भन्ने ही वे किसी भी सम्प्रदाय के हो, एकत्व का अनुभव करें।

आज समाज को जिसकी आवश्यकता है, वह है मानसिक मन्तुलन। उसकी पूर्ति तब से ही सम्भव है। मुझे विश्वास है, अगुव्रती और उनके सहयोगी इस पर गम्भीरता से चिन्तन करेंगे।

[१ अक्टूबर, १९६० को राजनगर (राजस्थान) में अगुव्रत-आन्दोलन के ग्याहर्वे वापिक अधिवेशन में प्रदत्त मंगल प्रवचन]

कार्त्तव्य पूर्ति के लिये नया मोड़ आवश्यक

समझौता नीति का विकास

अणुऊत-प्राणोत्पत्ति इस वर्षों की ध्वनि का पार कर चुका है। इस लम्बे समय में विश्व के रंगमंच पर खोटे-बड़े धनेको परिवर्तन हुए हैं व धनेक बननाए बनी है। विज्ञान की साम्प्रदायिक प्रगति हुई है। सामाजिक विकास प्रायिक उन्नति सम्पदा के मन्वर्तन की होइ में प्रत्येक राष्ट्र तत्परता से सक्रिय है। मन्वि-सन्तुलन के लिए सम्प्राप्तो के निर्माण की स्पर्धा भी कम नहीं रही है। चीन-यूरोप भी तीव्र गति में चलता है। बोडी बहुत मात्रा में प्रत्यक्ष युद्ध भी हुआ है घोर युद्ध प्रसंगा में बहु होठे-होठे बन्ध भी हैं। सा। बटमायो को सिमा कर देखा जाये तो मंगला है कि हिमा की सीमाएँ विस्तृत हुई हैं।

ऐतिक सक्रिय प्रीर भास्यिक प्रस्को की बुद्धि के उपरान्त भी भय भटी नहीं प्रप्तुत बडा घोर मानव जाति के प्रभन की कल्पना स्पष्ट हुई। तब उन लोगों को भी जो एक मात्र शस्त्र में विश्वास करते थे वह अनुभव हुआ है कि विचारों के प्रष्ट का यह सही भाव नहीं है। पारम्परिक सीद्दाई विश्वास भाईभारा सामीप्य प्रीर एक-दुसरों की नीति एवं कार्यक्रमों का सम्मान करने से ही समस्याओं का समाधान हो सकता है। इस पद्धति के द्वारा ही मनुष्य मनुष्य की जाति भी सकता है। एक सध में नहीं कि घाबेनपूरुं प्रवृत्ति बट रही है, ममकीना-नीति विकसित हो रही है।

चरित्र के साथ

यह जो हुआ है वह अणुऊत-प्राणोत्पत्ति के द्वारा हुआ है ऐसी नवीकित में नहीं कर सकता। किन्तु जो हुआ है, उसका भावीद्वार यह मनस है क्योंकि वह इसके लक्ष्य की पूर्ति है। प्राणोत्पत्ति का लक्ष्य है—चरित्र-विकास।

चरित्र का सम्बन्ध केवल व्यापार-शुद्धि तक ही सीमित नहीं है। उमका सम्बन्ध उन सब कार्यों से है, जो मनुष्य को हिमक बनाते हैं। खाद्य पदार्थों में मिलावट करने वालों को यदि चरित्रवान् नहीं कहा जा सकता, तो आणविक ग्रन्थों का निर्माण करने वालों को भी चरित्रवान् नहीं कहा जा सकता। शोपण, अन्याय, असहिष्णुता, आक्रमण, दूसरों के प्रभुत्व का अपहरण या उममें हस्तक्षेप और अनामाजिक प्रवृत्तियाँ, ये सब चरित्र के दोष हैं। लगभग सभी लोग इनसे आक्रान्त हैं। भेद है, मात्रा और प्रकार का। कोई एक प्रकार के दोष से आक्रान्त है तो कोई दूसरे प्रकार के दोष से, कोई कम मात्रा में है तो कोई अधिक मात्रा में। अभी मेरे सामने भारतीय नागरिक हैं। उनमें असहिष्णुता, आक्रमण, दूसरों के प्रभुत्व का अपहरण या उममें हस्तक्षेप, उन दोषों की मात्रा विशेष नहीं है। किन्तु शोपण और अनामाजिक प्रवृत्तियों की मात्रा उनमें अधिक है। व्यावहारिक सचाई जितनी बड़ी दूरदर्शियों राष्ट्र के नागरिकों में है, उतनी भारतीय नागरिकों में नहीं है। यद्यपि आमपाम की आलोचना में कुछ कष्ट होता है, पर उसे मिटाने के लिए सही निदान के अतिरिक्त और उपाय भी तो नहीं है। अगुव्रत-आन्दोलन की अधिक शक्ति जीवन-प्रवृत्तियों के असदाचार को मिटाने में लगी है। आन्दोलन ने छोटी छोटी बुराइयों की ओर जनता का ध्यान खींचा है। कुछ बुराइयों को लोग बुराई मानना भूल गये थे, उन्हें फिर से भान हुआ है और वे बुराई को बुराई समझने लगे हैं, यह आन्दोलन की सफलता है। बुराइयों को छोड़ने में जितनी अपेक्षा थी, उतने लोग सम्मिलित नहीं हुए हैं, यह आन्दोलन की असफलता है। असफलता का एक हेतु आर्थिक दुर्व्यवस्था हो सकती है, पर इसके अतिरिक्त कुछ और भी हैं। चारित्रिक आन्दोलन इसलिए पूर्ण सफल नहीं होते कि जो और हैं, उसे महत्त्व नहीं दिया जाता, सारा महत्त्व अर्थ-व्यवस्था को दिया जाता है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि अर्थ-व्यवस्था दोषपूर्ण होती है, तब समाज में विकार बढ़ते हैं। अर्थ-व्यवस्था का परिवर्तन एक राष्ट्रीय प्रश्न है। राष्ट्रीय नेताओं के सामने अभी समाजवादी समाज की स्थापना का लक्ष्य है। अगुव्रत-आन्दोलन का लक्ष्य है, चरित्रवान् समाज का निर्माण। अर्थ-व्यवस्था सुधरे बिना चरित्रवान् बनने में कठिनाई होती है तो चरित्रवान् बने बिना समाजवादी समाज बने, यह भी सम्भव नहीं है। इसलिए मैं बहुधा राष्ट्र के

प्रमुख व्यक्तिवा स रूढ़ता ह कि व धीर धीर यात्रनाया व गाव चरित्त विकास की भी महत्त्व ह । भारत मे प्रब भी ईसा मानस १ कि बर विद्वत को शान्ति प्रताक्रमरु धीर सह-धर्मित्व की प्रमुख देन हे सकता हे । धर्मगुणी इस देन को स्थिर बनाने बात हे । व समाज के घा हे । सर्वनाति व राजनीति मे वे उठे हुए हे । उक्त विद्वानता मे बच ग रचना सता उदभ्य हे । बसुध्व की प्रति क ति व उक्त नया सोइ सता प्रावश्यक हे । प्राश्नात्म की भावना सांगा तक गहु की हे प्रचार हया हे । धन विद्यात्मक रूप की धयता प्रविक हे । धर्मगुणी सभी गतिनाया नही ने ह । व सता का धयत पक्ष पर चलन क ति भी नता पात १ । वा सता १ उनका माग करिन हे । धीर यह भी ही सता ह कि उग सा । व उक्त जगा चलना प्राणि वम व सम्भवत न चल पात ह । पर व प्राप्त निीक्षण व ।

सत्य धपरिग्रह व स्वावसम्भन का धीर प्रहिता

यह बहुत ही अम ह कि गत्र साव धर्मगुणी बन जाव । सिम्बु ह भी इस धम मही हे कि समाज का साम बनत धर्मगुणी क । धर्मगुणी मे मरा मनसक १ - चारित्रिक सावसम्भन का प्रावश्यकता हय । समन हय धरिन । धरि एम जागी की कमी हो रही हे । उनका वा म भी स्पष्ट हे । नई पीढ़ी का प्रारम्भ वे ही बौद्धिक विकास की सिधा मिनता हे । चारित्रिक मृष्या क प्रति उनकी प्राश्ना बदान का मल नही बिबा थाता । भौतिक विचार का पक्ष पर प्राध्वारिमक विचार उक्त बहुत कम सू पात हे । धा प्रात्मिक भक्ति मुहुड बने बिना नैतिकता भी नही पदप पाती । बुद्ध गण्डो मे राष्ट्रीयता की भावना विकसित हुई हे । राष्ट्रीय भावना से नैतिक विकास का भी प्रोत्साहन सि सा हे । पर उससे नैतिकता का प्राणी विकास हुआ हे । हय उसका धर्मीयत विकास चाहत हे । धर्मित्त व्यवहार व भी नैतिकता ही धीर सब राष्ट के प्रति का बड-बड कार्या मे भी नैतिकता ह । इसका प्राचार भी सा ही बन सकती हे । प्रहिता धीर प्राध्वारिमकता मे कोई धम-धम नही हे । धम एक भीवन में धरिधा नही घाती सबको समान मानने की भावना विकास नही पाती । धम एक धत्य का भी प्राचरण नही होता । सत्य धपरिग्रह स्वावसम्भन हय धमी का धीर प्रहिता हे । प्रहिता की प्रतिष्ठा सबमे से ही हा बनती हे । बौद्धिक

विकास के साथ समय की शिक्षा मिले, वैसा शिक्षा-प्रयोग सम्भव नहीं हो रहा है। अगुव्रती का जीवन एक प्रयोगशाला जैसा होना चाहिए। नये-नये प्रयोग ही कार्य को आगे बढ़ाते हैं। कार्य-क्षेत्र बहुत विशाल है। कमी है—कार्य करने वाले व्यक्तियों की। व्यक्तियों का निर्माण सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण पक्ष है। ऐसे व्यक्ति बहुत कम तैयार किये जा सके हैं, जो इस ज्योति को सुदूर तक फैला सकें। व्यक्ति तब बनता है, जब उसका कोई निश्चित लक्ष्य हो, उसकी पूर्ति की तडफ हो और उसका आग्रह हो। रीति-रिवाज, आचार व्यवहार और परम्पराओं में मयम हो, मा-गी हो, सरलता हो, यह एक लक्ष्य है। इसकी पूर्ति की तडफ और आग्रह पैदा कर सके तो व्यक्ति-निर्माण की दिशा में एक सफल प्रयत्न होगा।

दूसरा दशक

आन्दोलन का दूसरा दशक अधिक सम्भावनाओं के साथ शुरू हो रहा है। विचार-पक्ष जो बना है, उसकी आचार में परिणति होगी, ऐसा विश्वास है। ऐसा न हो तो कोरे दागनिक मिथान्तों में होना जाना भी क्या है? इस चातुर्मास में अगुव्रती समाज-व्यवस्था के बारे में लम्बा चिन्तन चला है। कुछ निष्कर्ष भी सामने आये हैं। अ० भा० अगुव्रत समिति एक ऐसे शिक्षा-संस्थान की बात सोच रही है, जहाँ जनता को बौद्धिक और चारित्रिक शिक्षाएँ साथ साथ मिलें और जहाँ से अर्थनीति, राजनीति एवं समाज की परम्पराओं को अहिंसात्मक पथ-प्रदर्शन दिया जा सके। चरित्र-विक्रम के उपदेश प्रयोगात्मक शिक्षा के बिना पूर्ण सफल नहीं हो सकते।

बंगाल की इस सुदीर्घ यात्रा के बाद जोगो तक भावना पहुँचाने का क्रम एक प्रकार से पूर्ण होता है। अब दूसरे क्रम पर अधिक ध्यान देना है। अगुव्रत-आन्दोलन के कार्यकर्ता और उसके प्रशंसक इस पर गहराई से विचार करें।

[१६ अक्टूबर, १९५६ को कलकत्ता (पश्चिमी बंगाल) में अगुव्रत-आन्दोलन के दशम वार्षिक अधिवेशन में प्रदत्त मंगल प्रवचन]

पांच साधनों की साधना

समय की अपेक्षा होगी है। इसीलिए कोई भी अनुष्ठान धारम्भ और अन्त से मुक्त नहीं होता। निष्ठा ही एक ऐसी वस्तु है जिसका अन्त नहीं होता।

निष्ठा का पाना सहज बात नहीं है। पर जिये निष्ठा होती है वह कुछ कर बुझता है। सफल का अर्थ है निष्ठावान् और निष्ठावान् का अर्थ है सफल। प्रत्येक सन्तान का निष्ठावान् व्यक्तिवादी की अपेक्षा होगी है। अनुष्ठान-मान-दामन भी निष्ठावान् प्रती आहता है। निष्ठा में 'करा' या 'मरो' क सिवाय दूसरा विकल्प नहीं होता। सत्य की निष्ठा के लिए जिसने मृत्यु का भय करने की समझ ही बर जीता है और उसकी निष्ठा भीती है।

प्रायः का वैज्ञानिक गुण सिद्धांत की अपेक्षा प्रयोग में अधिक विश्वास करता है। धार्मिक लोग प्रयोग कम करते हैं और सिद्धांतों का अधिक दाह करते हैं। किन्तु प्रायः का धार्मिकवाद धर्मप्राप्त को अनुष्ठानों से रहा है उसे वे क्यों नहीं देखते? क्या वे धर्मोक्ति व्यवहार और धर्म की एक साथ चलाते रहे? धर्म प्रदान देल के धर्मोक्तिवादी क्यों? इस प्रश्न का समाधान किसे बिना क्या धार्मिक लोग धर्म की आदर्शों का केन्द्र किन्तु बनाये रख सकेंगे? धर्म से व्यक्ति का परिमार्जन नहीं होता तो उसकी उपासना से और क्या मिल सकता है? धर्म का वर्तमान में क्या उपयोग है? धार्मिक का जीवन किन्तु स्पष्ट होता है? अनुष्ठानों इसका उदाहरण उपस्थित करें। वे मृत्यु ही दूसरों के प्रति अभ्यास और सोचने करने का प्रमुख हेतु करता है। सब जीव समान हैं यह मानकर चलने वाले दूसरे अनुष्ठानों के प्रति कर व्यवहार करें वह किन्तु आदर्श है।

अनुष्ठानों सिद्धांतों—अनुष्ठानों से कर्म होता है, मनुष्ठानों होती हैं

और युद्ध होते हैं। सहिष्णु व्यक्ति प्रत्येक अप्रिय परिस्थिति को टाल देता है। जो सहन करने का मन्त्र नहीं जानता, वह शान्ति से जी नहीं सकता।

अणुव्रती नम्र हो—उद्वेगता से व्यक्ति बहुत नीचे स्तर पर चला जाता है। विनय अपना सहज गुण है। जो नम्र होता है, वह सहज ही दूसरों को अपनी ओर आकृष्ट कर लेता है।

अणुव्रती ममभावी हो—उनमें घृणा न हो। एक मनुष्य दूसरे मनुष्य के प्रति घृणा का मनोभाव रखे, यह कितनी दयनीय मनोदशा है। प्रेम का अभाव होता है, तभी घृणा बढ़ती है। प्रेम का विस्तार होने से ही घृणा मिट सकती है।

अणुव्रती स्वावलम्बी बनें—दूसरों पर निर्भर रहने वाले व्रतों को निभाने में कठिनाई अनुभव करते हैं। अपन प्रयत्नों में भरोसा रखने वाला विलासी नहीं बनता।

ये पांचों बातें अन्दोलन के व्रतों में हैं। किन्तु व्रत लेने मात्र से वे सफल नहीं होती। उनकी सफलता के लिए उनकी उपासना करनी होनी है। एक साथ सारे व्रतों की उपासना कोई कर सके तो बहुत अच्छी बात है, पर वैसा करना कठिन है। मैं अणुव्रतियों को परामर्श देता हूँ कि वे इस वर्ष इन पांच साधनों की साधना करें।

साधना का क्रम यह हो कि वे इन पांच बातों के अभ्यास का दैनिक लेखा-जोखा रखें। पांच अंकों की कल्पना करें और किस दिन कितने अंक प्राप्त होते हैं, इसका स्वयं ध्यान रखें। अगले अधिवेशन पर उसे प्रस्तुत करने का प्रयत्न करें।

दूसरों के लिए खपे बिना कोई भी उनके हृदय को नहीं छू सकता। आन्दोलन की भावना तब तक यथेष्ट प्रसार नहीं पा सकती, जब तक दूसरों के लिए कुछ न किया जाये। परन्तु दूसरों के लिए करने की क्षमता उन्हीं में हो सकती है, जो अपने लिए कुछ करें, अपने आपको खपायें, तपायें। मैं विश्वास करता हूँ कि अणुव्रतियों में कार्य करने की तडफ जायेगी और अगले वर्ष तक उसका परिणाम अवश्य ही प्रत्यक्ष होगा।

[१८ अक्टूबर १९५६ को कलकत्ता (पश्चिमी बंगाल) में अणुव्रत-आन्दोलन के दशम वार्षिक अधिवेशन में प्रदत्त दीक्षान्त प्रवचन]

आचार संहिता की आवश्यकता

असुगुप्त साधना का पथ है। साधना के इस पथ का जब हम व्यापक बनाना चाहते हैं तब वह पथ धार्मिकता का रूप में बना है। इस धार्मिकता का उद्देश्य है जन-जीवन सम्यक्तम बन उसमें समय पावे। 'संयम एतन्नु जीवन्तम्' के शेष के पीछे भी यही भावना छिपी है।

भारतीय संस्कृति वा मानव-संस्कृति की यही विशेषता रही है कि मान स्वयं पर स्वयं सबसे बरतना सीखे। यह स्वयं पर संयम करने की विशेषता केवल मानव में ही रही है अन्य किसी में नहीं। भारतवर्ष में सदा से ही सबसहीस मनुष्य को ही प्रधानता दी गई है। जैसे प्रपण में अनुप्य न प्रपण है और न अप्रधान। संयम बुद्धि पर प्रधान हो जाता है और संयम के अभाव में अप्रधान या नीच। प्रधानता कोई भौतिक या सारार बस्तु नहीं। प्रधानता व्यक्ति का निज का स्व है उसका स्वयं का लक्ष्य है। जीवन व्यक्ति कितना ध्यात्म-गुण है वही प्रधानता की कसौटी है। आचार्य हेमचन्द्र ने कहा है—
असन्तोषी व्यक्ति चाहे अक्रवर्ती सन्नाद हो पर वह सुखी नहीं होता।

आज प्रत्येक व्यक्ति अपने को ठाने। वही से बनी और निजल से निर्धन कोई सुखी नहीं हो सकता। जो जितना धनी है वह उतना ही असन्तोष है। सबसे अधिक असन्तोष बड़ी है जिसके पास कुछ भी नहीं।

संयम जीवन का किम्यात्मक पक्ष

ध्यात्मगुण का एकमात्र मार्ग ध्यात्म-संयम है। शोका का परस्पर अन्त सम्बन्ध है। शोका संयम को निषेधात्मक मानते हैं पर वह जीवन का सर्वोपरि किम्यात्मक पक्ष है। अल्पि अक्षयम स्वीकारात्मक है पर वह जीवन का किम्यात्मक

करने वाला है, जबकि मयम ऊर्ध्वोकारात्मक हाते हुए भी निर्माणात्मक पक्ष है।

देश की अन्तरात्मा का निर्माण राष्ट्रीय चरित्र और मयम से होता है। आज मनुष्य सग्रह के पीछे दौड़ता है। यदि वह जान, विचारो और मदगुणो का सग्रह करे तो काइ हज नहीं, पर आज पदार्थ और मत्ता ही मग्रहणीय बन गई है। इसका मग्रह भी कौशल व चातुर्य की अपेक्षा रखता है, इसलिए यह प्राप्त भी मयका नहीं होता। जिनमे मत्ता या पदार्थ के मग्रह का कौशल है, यदि वे हममे विमुख हो जाते हैं तो उनकी प्रधानता है, विद्यपता है। लालसाओ की प्रकृती आग से वे स्वयं तो बचेगी ही, विश्व का भी बचा सकेंगे। समाज की अनुकरणीय दशा होती है। जैसा बड़े लोग करते हैं उन्हीं का अनुकरण सामान्य लोग करने लगते हैं।

उद्धार के लिए कौन-सा भगवान् आयेगा ?

आज मयूचे समाज में अनतिक्रमता की महामारी, नीति-भ्रष्टता की प्लेग फैली हुई है। 'यदा यदाहि धमम्य ग्लानिभवति भारत, अभ्युत्थानमधमम्य तदात्मान सृजाम्यहम्' कह कर हम अपनी जिम्मेदारी में टटकारा नहीं पा सकते। हमारा उद्धार करने के लिए कौन-सा भगवान् आयेगा ? हमें ही परमात्म रूप धारण करना है। अपनी जिम्मेदारी में वेग्वर होना, आज का सबसे बड़ा खतरा है। इसके परिणाम भी भयकर हाते हैं।

समाज और राजनीति जिम्मेदार

आज के इस पतनोन्मुख वातावरण में सर्व-व्यम-मुक्ति की बात बहुत दूर है। फिर भी मय चाहते हैं कि अनैतिकता का यह आतक किसी तरह में मिट जाये। इसको प्रथम देने की जिम्मेदारी दो पर है—समाज पर और राजनीति पर। समाज आज शृंखला-विहीन व नीति-भ्रष्ट हो रहा है। अतः समाज के लोगों के लिए एक आचार-सहिता बने जो सबको मान्य हो सके। अन्यथा चाहते हुए भी लोग कुरीतियों के दलदल में बाहर नहीं निकल पायेंगे।

दूसरी बात राजनीति की है। जो राजनीतिक लोग धम की बातों का साम्प्रदायिक वताते हैं, वे स्वयं आज इतने सकुचित दायरे में आ गये हैं कि उनके लिए क्या कहा जाये ? धर्म-शाम्त्र और नीति-शाम्त्र में आत्म-प्रशसा

घोर पर-निन्दा को शोष माना गया है जबकि घोर राजनीति में धारम प्रगल्भता घोर पर-निन्दा करना एक आवश्यक कर्तव्य ही समझ जाना गया है । घन उन राजनीतिक लोभो के लिए भी एक आचार-सन्निता बन जो सब दमो को मास्य हो । इसके लिए एक सामान्य सगठन भी बन जिसमें एक बन का प्रतिनिधि ही घपने इन के व्यक्तियों से स्वयं उम आचार संहिता के मानने का अनुरोध करे । यह किसी को बुरा नहीं मरेगा ।

असुब्रत आम्बोलन इन सब पहलुओं को छूता है घोर इसके लिए यह प्रयत्नशील भी है । आम्बोलन का पिछला बर्ष बहुत सफल घोर यशस्वी रहा तथापि एक बात मिरापा नी भी है । जिस वैमाने में धर्मेतिक घोर दिग्भसात्मक कार्य बन रहे है उस वैमाने में नैतिक कार्य नहीं बन रहे है । इसका एक कारण नी है धर्मेतिक कार्यक्रमा में साम साम बन सत्ता का आकर्षण होता है घन उस घोर जनता नी सहक प्रवृत्ति हो जाती है । नैतिक कार्यक्रमा नी घोर जनता धारपित नहीं होती क्योंकि बहा बौर्दे नाम या स्वार्थ-सिद्ध होने नी सम्भावना नहीं रहती । हमारा लक्ष्य है कि जन-जन में यह बात पहुँचारे कि धर्मेतिकता में पठन है घोर नैतिकता में जीवन का समुत्थान निहित है । मुझे पूर्ण विश्वास है कि त्रिन व्यक्तियों घोर सत्वाघा में नैतिक निष्ठा है उनका सहयोग आम्बोलन को मिलेगा ।

[१६ अक्टूबर १९५५ को कानपुर (उत्तरप्रदेश) में असुब्रत-आम्बोलन के नवम् मासिक अधिवेशन में प्रवक्त मनस प्रवचन]

सादगी व सरलता निर्धनता की पराकाष्ठा नहीं

हिंसा व आरम्भ के प्रसव

जिमकी चाह नहीं है, उमकी गह मामने है और जिमकी चाह है, उमकी राह नहीं है। आज का मनुष्य द्विपर्यय की दुनिया में जी रहा है। चाह सुख की है, कार्य दुःख के हो रहे हैं। चाह शान्ति की है, प्रयोग अग्नि-अस्त्र के चल रहे हैं।

भगवान् श्री महावीर ने कहा—दुःख हिंसा व आरम्भ प्रसूत है। इन शब्दों में वर्तमान की कठिनाइयों का सग्रह है। हिंसा का पहला प्रसव है—वैर-विरोध, दूसरा—भय और तीसरा—दुःख।

आरम्भ का पहला प्रसव है—सग्रह, दूसरा—वैषम्य और तीसरा—दुःख। किन्हीं को अतिभाव सता रहा है और किन्हीं को अभाव। अतिभाव के पीछे संरक्षण का रौद्र भाव है और अभाव के पीछे प्राप्ति की आर्त्त वेदना।

सुख का हेतु अभाव भी नहीं है और अतिभाव भी नहीं है। सुख का हेतु स्वभाव है। मनुष्य अपने स्वभाव से जितना दूर हटता है, उतना ही अतिभाव-पदाय का अतिसग्रह करने लगता है। पदार्थ से दूर हटने का मतलब है, स्वभाव की ओर गति। स्वयंकृत अभाव में स्वभाव का दर्शन निकट में होता है। अभाव विवशता से होता है, वह दुःख देता है। पदार्थ का अभाव हो—यह कोई कैसे चाहेगा? अतिभाव की चाह होती है, पर वह करनी नहीं चाहिए। यथाभाव की क्षमता समाज-व्यवस्था में है। जो नहीं होना चाहिए, उसके निवारण की क्षमता त्याग या व्रत में है। अणुव्रत का संदेश यही है—

का नहीं होना चाहिए उसमें दूर ले। यह व्यव बाघों की स्वयं स्तूर्ति व्यवस्था है। मूल का हेतु प्रतिष्ठा या वैरी है। उसका प्रायः धनपत्र यह है। जो व्यक्ति दूसरा के स्व का कभी हस्त नहीं करता वह मरना मित्र है। मुझ की दृष्टि बाघी पद को से कभी स्वी है वह मानता भय है। हममें धन मित्र प्रसमाधि बढ़ता है। भगवान् जी महाभा न कहा—महाधर्म नरक का हेतु है। नरक का मात्र वा न मात्र यह भाग ही बात है किन्तु हममें दुर्गति होती है हममें कोई मन्दर नहीं। महाधर्म का उद्भव महापरिग्रह है। महापरिग्रह का उद्भव है महाभाग या महाविभाग। जस या दुष्मा—महाविभाग के लिए महापरिग्रह और महापरिग्रह के लिए महाधर्म। जिसका मूल दुर्गति है उसका पत्र-पुत्र में मुर्खि का ग शोरी ? महाधर्म को प्राप्त की भाषा में बड़ा उद्भव और बड़ा व्यापार कहा जा सकता है।

राष्ट्रीय दृष्टि से बड़े बड़े उद्योगों और व्यापारों का पक्ष में मिलता होना प्रोत्साहन भी दिया जाता है। ये जिन गति की दृष्टि से रहता है मुझ और शक्ति के लिए महाधर्म और महापरिग्रह प्रादरणीय नहीं है यह क्षय-बाही है। निष्ठापूर्वक धर्मन और परिग्रह के प्रसंगिक से मुझ शक्ति का विकास होता है यह अनुभवपत्र भी है।

उत्तम जीवन

जिस मार्ग में जो स्वयं स्पष्ट होता है वही उसकी प्रेरणा देने का अधिकारी है। जिसे से विवा सकता है। दृष्टि से दृष्टि मिलती है। साक्षात्कार में दृष्टि के सम्यक्करण का बहुत महत्त्व रह है। यह धर्मदर्शी क्षयियों की लम्बी परम्परा है। धर्मन परिग्रह और भाग से दूर रहकर उद्योगों को सर्व पामा समाधान पामा मुझ और शक्ति का अनुभव पामा वही उद्योगों के लक्ष्य है। उसका सार है—तप और धर्म। तपस्वी और धर्मजी जीवन ही उत्तम जीवन है।

हनु का उपरम

मोक्ष-प्रदान क्षेत्रों में पत्रों से समृद्ध जीवन ही उत्तम जीवन है। धर्म प्रदान परम्परा इस मानव्य को स्वीकार नहीं करती। साक्षी व सुरक्षा निर्भरता की पदाकांक्षा नहीं है किन्तु त्याग की महिमा है। जन से

मन को समाधान नहीं मिलता। मानसिक समाधि के बिना शान्ति नहीं।
हमारा शान्ति-मूत्र है—दृष्ट का उण्डम। भाग-प्रधान जगत् में दृष्ट ही पाम
पुरुषार्थ है।

सबसे बड़ा सकट

जी चाहता है मन की सारी अनुभूति सबके मन उता-हू। कुछ बनना
भी है, नहीं भी बनना। नहीं ने अच्छा ही है कि कुछ बनना है। नव-निर्माण
मरल नहीं जाना। जीवन के मूल्य बदलने हैं, नूल्यावन की दृष्टिया बदलनी
है, वे नहीं बदल रही है। जो नहीं बनने का है वह बदल रहा है। अनु-
गामन की कमी, विनय की परम्परा का उन्मूलन, त्याग के प्रति अश्रद्धा स्वाय
की प्रचुरता—ये नहीं बढ़ने चाहिए, पर वे बढ़ रहे हैं। उद्वेगना बढ़ रही
है, पुलिमा की गोली चलने का क्रम बट रहा है। शान्त का नियंत्रण बढ़ रहा
है। स्व-नियमन कम हो रहा है। यही क्रम चलना ता एक दिन सब स्वयं को
खतरे में पायेंगे।

स्व-नियन्त्रण की कमी दीखती है, नव सभी का दृष्ट हो रहा है। शान्त
भी पछताने हैं, और-और भी पछताने हैं। किन्तु को पछताने
में क्या होगा? स्व-नियमन की परम्परा को छोड़कर दूर भागने का क्रम
तोड़ना होगा। राजनैतिक चेतना के वहाव में सारी शान्ति गौण हो रही है,
यह सबसे बड़ा सकट है।

राजनैतिक प्रभुत्व अतिमात्र बढ़ गया है। जीवन का प्रत्येक क्षेत्र उसमें
आक्रान्त है। स्व-नियमन पर यह आघात है। पूजा, सत्ता और केन्द्रीकरण
में सन्तुलन भिन्न जाता है।

अणुव्रत का आदर्श यही है कि व्यक्ति-व्यक्ति स्व-नियमन के द्वारा पूजा,
सत्ता और अधिकार का संग्रह छोड़ें। अपने को भार-मुक्त बना दूंगे को
हल्का बनाने का मार्ग दिखायें। अनुकरण की दुनिया में अगली पक्ति वालों
को सम्हलने की अधिक आवश्यकता है।

[१२ अक्टूबर, १९५६ को मरदा-शहर (राजस्थान) में अणुव्रत-आन्दोलन
के सप्तम वार्षिक अत्रिवेशन में प्रदत्त मंगल प्रवचन]

प्रातः और अनुशासन

मानव मान का स्वभाव है कि वह सम्बन्धकार की परिधि से बाहर निकल कर प्रकाश की ओर बढ़ने का इच्छुक होता है। अतः-ग्रहण में भी यही लक्ष्य निहित है। मानव-समाज के व्याप्त विषमता अनेकता एवं बेमानी जब व्यक्ति की बुद्धिगोचर होती है तो उसके अन्तर में एक प्रयत्न उठता है एक भीख निकसती है— यह क्या हो रहा है। बेमनस्य शोषण एवं अज्ञानता को दूर करने प्रकाश की शक्ति देखने व सम्पूर्ण अज्ञानता के लिए व्यक्ति मानव की आत्मा उद्देशित हो उठती है और वह त्याग की भावना से प्रेरित होकर अज्ञानता की ओर आकर्षित होता है।

अनुष्ण सर्व प्रथम अज्ञानता को मुक्तता है अज्ञानता व महत्ता को अपने अन्तर्गत लक्ष्य पर लक्ष्य है अज्ञानता अज्ञानता है और फिर वह अपने जीवन को सुधारने के लिए अतः-ग्रहण करता है।

अज्ञानता में जो सबसे बड़ी बात होती है वह है 'आत्मानुशासन'। अतः-ग्रहण करना आसान है परन्तु अज्ञानता निश्चय बहुत मुश्किल है। यह मानी हुई बात है कि अज्ञानता की अज्ञानता से अनेक विषय और आचार उत्पन्न होती है। अज्ञानता को अपनी संस्कृत-साधना से हटाने के लिए मोक्षरूपी आचार्य निरन्तर प्रयास करता रहता है। किन्तु वह विचलित होना नहीं चाहता बल्कि अज्ञानता अज्ञानता पर अनुशासन स्थापित कर लिया है। अज्ञानता का अज्ञानता यह है कि अज्ञानता से विचलित न होने के लिए मोक्षरूपी आचार्य पर अज्ञानता अज्ञानता है। अज्ञानता को चाहिए कि वह अपनी आत्मा पर अज्ञानता रबी और किसी भी परिस्थिति में अपने अज्ञानता से विचलित न हो। आत्मानुशासन के बिना कोई भी कार्य अज्ञानता नहीं हो सकता।

हृदय-परिवर्तन के द्वारा ही व्रतों की ओर मनुष्य का आकर्षण होता है, अतः प्रेरणा प्राप्त होने पर व्यक्ति को चाहिए कि वह केवल व्रतों के शब्दों को नहीं पकड़े, बल्कि उसकी व्यापक भूमिका को पकड़े। व्रत ग्रहण में अपनी जीवन क्षेत्र में जिम्मेदार शक्ति का बीजारोपण हो चुका है, उसे वह फलन, फूलती अनुभव करे और अपने माथियों को इसका अनुभव कराये, किन्तु एक बात का ध्यान अवश्य रखा जाये कि व्रतों के पालन में किसी प्रकार का दबाव या एहसान नहीं होना चाहिए। वस्तुतः हृदय परिवर्तन ही मन्त्रा धर्म बनलाया गया है। व्रत-पालन में स्व-नियमन व हृदय-परिवर्तन जितना महायत्न होगा, उतना दूसरा नहीं।

जो अग्रगुणती बने है, उन्हें पर-निर्भरता से दूर रहना चाहिए। पर-निर्भरता में व्रत विचलित होते रहते हैं, अतः स्व-निर्भरता की आवश्यकता है।

व्रती समाज की कल्पना जितनी दुरुह है, उतनी ही सुखद है। व्रत लेने वाला कोरा व्रत ही नहीं लेता, पहले वह विवेक को जगाता है, अज्ञान और मकल्प को दूर करता है, कठिनाइयाँ भेदने की क्षमता पैदा करता है, प्रवाह के प्रतिबल चलने का साहस लाता है, फिर वह व्रत लेता है।

मूढम दृष्टि से देखें तो बाह्य का अनुशासन विजातीय अनुशासन है। व्रती आत्मानुशासन की परिधि में आ जाता है। आज अनुशासन की शृंखला छिन्न-भिन्न हो रही है। स्वतन्त्रता का सही मूल्य नहीं आका गया है। नियमानुवर्तिता और मर्यादा के बिना स्वतन्त्रता नहीं आती। अग्रगुणत-आन्दोलन स्वतन्त्रता की यथार्थ अनुभूति के लिए आत्मानुशासन का वातावरण पैदा करना चाहता है। विधि श्रुति कोई अग्रगुणती बने या न बन, यह उसकी अपनी इच्छा है, किन्तु आत्मानुशासन को विकसित किये बिना कोई न रहे, यह इसकी पक्कभूमि है, जो मैत्रीपूर्वक समझाने-बुझाने से हृदय-परिवर्तन के द्वारा ही प्रशस्त हो सकती है।

दबाव डालने की प्रक्रिया हमारे पास नहीं है। वह भय का रस्ता है। अभय के बिना स्वतन्त्र भावना विकसित नहीं होती। अग्रगुणती जो बने है, उन्हें पर-निर्भरता की ओर मुह किये नहीं चलना चाहिए। वह व्रतों को तोड़ने का माग है। विलास, भोग, बहृप्य और ऐश्वर्यागम व्रतों के शत्रु हैं। व्रती

का वास्तव धार्मिक कृति से नहीं होना चाहिए। उनकी आत्मा का विनाश होना चाहिए।

हमारा विश्वास सच्चा है नहीं भाषा से है। तेज भाषा से निवरता है सच्चा से नहीं।

आत्मानुशासन का धार्मिक जनसाधारण तक पहुँचना चाहिए। अणुप्रतियो का एक विवेक वाचित्व है कि व बचस प्रचार द्वारा ही नहीं किन्तु अपने मकत धारण्ड द्वारा अतुप्रतियो द्वारा अपने धामधाम व वातावरण को आत्मानुशासन के लिए उत्कृष्ट बनायें।

अनैतिकता से अभिज्ञान भाव प्राप्त नहीं है। वे उससे दूर होना भी चाहते हैं पर बहुतों को मार्ग नहीं मिलता। कुछ साग घाघड़ी भी हो सकते हैं। मालिपूर्वक हमकावा जाये तो वे भी बचस मकत है। हमे मनुष्य की योग्यता से पूरा विश्वास है।

वातावरण स्व-नियमन से प्रभावित हो जाये तो बहनी ही उच्च लक्षता की भीड़ तक तकनी है। मैं प्रसन्न हूँ कि भोग प्रता का अधिकाधिक मूस्य घाँफने लगे हैं। भोग अचरम के युग में लयम की रक्षा बचनी गे बह भी कम बात नहीं है। वह धीरे धार्मिक स्पष्ट बने यह तो धीरे भी सुधी की बात है। मैं आशावान् हूँ। आप सब भोग आशाहीन बने धीरे धार्मिक उत्साह का कार्य जाये बहायें।

[१४ अक्टूबर १९२९ को सरदारदाहर (राजस्थान) में अणुप्रत-आम्बोशन के सप्तम वार्षिक अधिवेशन पर प्रवक्तृ शिवालय प्रवचन]

अशान्ति की चिनगारियां

सुख-सुविधा और शान्ति

आप अनुभव है—'नेव से अतो नेव से दूर वह न समीप है और न दूर। यह बहुत गूढ है, पर बहुत ही सच है। मनुष्य शान्ति की खोज में है। वह बाहर में नहीं आती, इसलिए वह उमर दूर नहीं है और वर मित नहीं रही है इसलिए वह उसके समीप भी नहीं है। यह न दूर है और न समीप। इसलिए उसे समझना कठिन है, पकड़ना कठिनतर, रचना कठिनतम। पटल सुख सुविधा, फिर शान्ति—ऐसा लगता है पर स्थिति एसी नहीं है। सुख-सुविधा या आवश्यकता की पूर्ति जीवन-निर्वाह या नवानर मानव अवश्य है, पर शान्ति की पहली मजिल नहीं है। सुख-सुविधा की सामग्री के परम भाव में भी बहुत सारे शान्ति के लिए मारे मारे फिरते हैं। उनके अभाव से प्रताडित व्यक्ति भी शान्ति प्राप्त किये हुए हैं। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि सुख-सुविधा और शान्ति के परस्पर में कोई लगाव नहीं है—पौर्वापर्य या सहाचर्य भी नहीं है। सुख-सुविधा होने पर भी शान्ति हो—ऐसी व्याप्ति या नियम नहीं है। इसलिए जीवन-निर्वाह या सुख सुविधा की समस्या के समाधान के साथ शान्ति के प्रश्नों को नहीं जोड़ना चाहिए। उस पर स्वतन्त्र दृष्टि में विचार होना चाहिए।

शान्ति का वाचक तत्त्व उन्माद या व्यामाह है। वैयक्तिक उन्माद के रहते व्यक्ति को शान्ति नहीं मिलती। यही दशा जाति और राष्ट्र की है। जीवन की धारा व्यक्ति, जाति, प्रदेश, राष्ट्र और धर्म में जुड़ी हुई जाती है, इसलिए उसे इन सबका गौरव होता है, पर वह गौरव दूसरे व्यक्ति, जाति प्रदेश, राष्ट्र और धर्म के पतन पर पलने लगता है, उन्हें दबाकर बढ़ता है,

बही सन्निभ हो जाती है। एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति का गोपण करता है उमके काम का अनुचित नाम उठाना चाहता है। मरणा का हीन गमभ उम्हे निरस्त करने के लिए—उह वैयक्तिक उमाह है। शांति धरन नियन्त्रण स मिसली है। धरनी सुख-सुविधा को सर्वोपरि मानकर धरन याग मया पर नियन्त्रण रब नहीं सकता। इसमिण धर धरणा न बना रहा है। एक धोर काम काम केकर अधिक काम कराने की भावना है यम। धा। धाम केकर काम से ी पुगाने की भावना है यह वैयक्तिक उम्माह का लोप है। धनि विमाम धनिभोग धादि धरिण को मासिन हरा। धानी मारी धनिधा उमीमे पैबा हो ी है। य धमामि की धिनधारिया है।

समुद्र धोर स य नहमाने धामी धानिधा धा। उमाह न धिनधी पीडित है इसका लभुता धरिण धरिणी की धानि-सेर की धीनि । धि-कुम्मान भी धस्युधयता के राग मे कम पीडित नहीं है। धमेरिका जैसे राष्ट्र का धाधुनिक मानम भी मीधो धानि के धनि धुगा को लभुम उम्माह नहीं पाय है। ये धस्युध की धिनधारिया है।

प्राथमिकता धोर प्राणीयता की बीमारी भी कम धरिणरारन नहीं है। एक राष्ट्र की प्रजा भी प्राण भेद के कारण धापस मे गम्भीरवीर गै। क धमने को कुचलता या धिराना चाहे यह धिनधी धयनीय रहा है। धमी धाम्ना की लभ रचता के धरन को केकर प्राथमिकता का उम्माह भी धैना। यह लभमुध धिनधीय है। दुग्ध स्वार्थ महान् धित के बाधक बनने ही सङ्कषाठे यह स्पष्ट धनुमन हुआ। ये प्राथमिक उम्माह धस्युध की धिनधारिया है।

राष्ट्रीय उम्माह भी लयमन है। ही है। एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्र को धबाये रबना हङ्ग धाना चाहता है; लभ धस्युध के लुनिय ध्यापक धोर धियधु धमन है। छोटे धोर बडे सभी कुछ एकक स्वयमून धमाल है।

धामिक उम्माह—धाम्प्रधारिक ध्यामोह धबडे धधिक धनरलाह है। धर्न रबा के बहाने धाहिहा के नाम पर हिम धोर धध क नाम पर, धून का धिनना धवधार होता है धवना दूसरे धिमी के बहाने नहीं होता।

सात्य की धिरुध धधिस्यधित

य उम्माह धो के लो धर्न धोर धानि भी धस्ने पङ्क धावे यह धमी

नहीं होने की बात है। इस तथ्य पर पहुँचने के बाद अणुव्रत-आन्दोलन की आवश्यकता अनुभूत होती है। वह चरित्र का आन्दोलन है। दूसरे शब्दों में शान्ति का आन्दोलन है। चरित्र और शान्ति दो नहीं, एक ही मत्त की द्विरूप अभिव्यक्ति है। चरित्र है वही शान्ति और शान्ति है वही चरित्र। तात्पर्य यह हुआ कि चरित्र और शान्ति परस्पर परिव्याप्त हैं।

स्वत्व-विलय

व्यक्ति मिट नहीं सकता। जाति, प्रदेश, राष्ट्र और धर्म भी मिट जायें— यह सम्भव नहीं लगता। इन सबकी कृत्रिम भेद-रेखाएँ, ऊपरी सीमाएँ मिट सकती हैं, वे मिट जायें— यह अणुव्रत आन्दोलन की प्रेरक भावना है। एक व्यक्ति दूसरे में विलय कर दे, अपन को मिला दे। दूसरों के स्वत्व को चूमन की वृष्टता न जागे, उतना विलीनीकरण आवश्यक है। इसी प्रकार अस्पृश्यता हीनता, सन्देहशीलता, वैमनस्य, आक्रमण और मिथ्यावाद न बढ़े, उतनी सीमा तक जाति, प्रदेश, राष्ट्र और धर्म सम्प्रदायों का विलीनीकरण भी आवश्यक है। यह विलय मौलिक निधि या तात्त्विक गौरवमय परम्परा को मिटाने वाला नहीं है। यह अति स्वाश्र, झूठा अभिमान, झूठे बडप्पन की भावना का त्याग है।

अणुव्रत-आन्दोलन के पास त्याग ही त्याग की बात है। झूठ त्याग देगे तो सचाई अपने आप निखर उठेगी। दूसरों के प्रति सयम बर्तेंगे तो मद्-भावना अपने आप बढेगी। अपने आप में सयत रहेंगे तो शान्ति स्वयं बढेगी। यह सब कुछ कल्पना या भावना जैसा लगता होगा। लोग कहते हैं—अणुव्रत-आन्दोलन केवल भावना-प्रधान है, कार्य-प्रधान नहीं। बात कुछ सच भी है। सही भावना पहले आनी ही चाहिए। उसके बिना कार्य की अन्ध्याई भी कैसे आयेगी ?

अणुव्रतियों का आत्मालोचन

जो अणुव्रती बने हैं, उनकी जीवन-चर्या अणुव्रतों के अनुरूप है या नहीं, इसे वे भली भाँति निहारें। उन्होंने सयम का पथ चुना है, पर जीवन की आवश्यकताएँ कम हुई हैं या नहीं, वे मुह कर देखें। सरल जीवन वित्ताने का सकल्प किया है, पर वक्रता का भाव छूटा या नहीं, इसे टटोने। समता व

पैनी का बल मिया है पर दूसरा के प्रति उनकी क्रूरता कम हुई या नहीं पराबलम्बन का नाश बटा या नहीं इसकी प्राप्ति करना करें। परिग्रह का परि मास करने की इच्छा प्रबल की है पर जोन-विभास और उसकी सामग्री के सहाय का आकर्षण कम हुआ या नहीं इसे सोच। मत्प के प्रति निष्ठा बर्धायी है पर ईमानदारी की वृत्ति बनी या नहीं इनका प्रसु-नीक्षण कर। बोड़े में इनका ही बेसी त्याग और मोक्ष के प्रानन्द में उन्हें प्रतर लया या नहीं ? त्याग से भङ्गा बल आत्म-विश्वास और प्रबल बडा या नहीं इसकी कसौटी कर। हिमा और परिग्रह के प्रस्वीकरण की प्रार प्रमति करने के लिए महाहिंसा और महापरिग्रह के साधनो का सोडा या नहीं इन पर गौर करें। यह धर्मधर्मो का आरमासाधन है। ब न प्रश्नो का प्रपन आत्म उत्तर में और दूसरा का हमका व्यावहारिक उत्तर दे मौखिक नहीं।

आत्मोत्तम का मुख्य कार्य बना की साधना का प्रसार है। उसमें कौन साध लेंछ है जोन नहीं — यह व्यक्ति का प्रपना प्रस्त है। मुझ विदाम है उत्प्रबल धार्मिक सफल होगा। जोन बना की साधना का समझने स्वतन्त्र मुख्य प्राणये और बनी बन शक्ति का पत्र प्रपदन करेंगे।

[२ अक्टूबर १९४४ को उद्यम (मध्य प्रदेश) में दण्डवत आम्बालन के अष्टम वार्षिक परिषदेक में प्रबल मदन प्रबलन]

व्रत साध्य नहीं; साधन

आज पूर्णाहुति का दिन है। उठ प्रविशान का कार्यक्रम पूर्ण हो रहा है, पर लक्ष्य पूरा नहीं हो रहा है। वह अब भी बहुत आगे है। अगुव्रतियों को उसे पाने के लिए अपन आपको होम देना है। दूसरो को होम देने की बात बहुत सरल है, उमका अभ्यास भी है, पर अपने आपको होम देने का अभ्यास नहीं है। अगुव्रतियों को वही करना है।

अगुव्रती भाई-बहिना ने दीक्षा ली ह, व्रत लिय है। व्रत जीवन की पवित्रता है। पवित्रता बाहर से नहीं आती। अपवित्रता बाहर से आती ह। अपने आपको होम देन का अर्थ है, बाहर से आने वाली अपवित्रता को रोकना। इसलिए अगुव्रतियों न विगेष कुछ नहीं किया, विवेकशील प्राणी होन के नाते जो अवश्य करना चाहिए, वह किया है।

ये व्रत कोई बडे नहीं है, किन्तु मनुष्या की मनोदशा बहुत नीची हो गई। वैयक्तिक स्वाथ सीमा पार कर गया, इसलिए ये भी बहुत बडे लग रहे हैं। नहीं तो भग्न धोखा न देना अप्रामाणिकता का व्यवहार न करना, मिलावट न करना, भूठा ताल-माप न करना, ऐसी-ऐसी सहज बातों का व्रत लेने की बात ही क्यों उठे ?

पाप-वृद्धि का क्रम

पदाथ मनुष्य पर छा गये। वह अपन आपको भूल बैठा। वेईमान दृष्टि मे बुराई पनपने लगी। बुराई भी एक माथ नहीं आ जाती। उसका भी अभ्यास-क्रम होता ह। पहले पहल बुराई करते घृणा होती है, दूसरी बार सकोच, तीसरी बार नि सकोचता आ जाती है और चौथी बार मे साह्य बढ़

बाग है। फिर ना पाप का सम्झना हो जाता है। सम्झना बुद्धि का त्याग सुनस नहीं होगा। इसलिए मलाई का गहज प्रवेश नहीं होगा।

मलाई का स्थिरीकरण

बुराई भी सम्झना के बिना नहीं घाती जब मलाई सम्झना के बिना कैसे घाये ? उसके लिए ठाँ और अधिक साधना चाहिए। साधना का अर्थ है श्रद्धा। मलाई में श्रद्धा ही और वह सम्पन्न हो। उसके बाद नियंत्रण या रीति। स्वयं की स्थिरता के लिए व्रत-अग्रहण। इसके बाद आन्तरिक बोधन का प्रयत्न करना होना पर मलाई का स्थिरीकरण होना है। अग्रगुणी ऐसा सम्झना करे।

व्रत साध्य नहीं है। साध्य है आन्तरिक परिवर्तना जीवन का वृद्धि। व्रत उमर के साधन है। साधन का अर्थ है निश्चित हो जाना उचित नहीं है। वे घाते बढ़ने की प्रकृति पताकाए है गतिरोध के सम्झना नो। इती जो बस या बसने है वे बसने बाहरी स्थितिमा से दूर और पदाव से गहन ही न हो, वे आन्तरिक बासनामा से भी दूर रहना का सम्झना बसाय। ऐसा हुए बिना त्याग व व्रत का यथे परिणाम नहीं घाता। इतर त्याग हो जाता है और उतर बासनामा का मेह नहीं हाता बँसी हासत से वे मार्गान्तर या रूपा स्तर से प्रकट होती है। फिर त्याग में गतिमा निकमती है यह बाधनीय नहीं।

अन्वामगुणु तरीका से वन कमाले का त्याग है पर जीवन धार्मिक मार से धार्मिक बाधित रहे तब सपह की बासना मन्द नहीं होगी। सपह की बुद्धि तीव्र होती है तब त्याग धार्मिक वन जाते है। बिना सम्झना भाषा में बन्ना और छोडा उसके सिवाय सम्झना के सेव तरीका में भासना प्रसार पती है जो परिणाम में सम्झना का मार्ग बरबतता है वा रूप बरबतता है पर सम्झना की बुद्धि बिचसे घाते सम्झना अर्थ से बढते है वह नहीं बरबतती बुराई नहीं मिन्ती। इसलिए मैं कहना चाहता कि अग्रगुणी बड़ी पहणई से इसे सोचें। उन्होंने सोचा भी है। वे महान् कार्य के लिए चले है ठाँ चलते ही चलते स्मरने नहीं। कठिनाइया पाती है पर उनसे बरबतते नहीं। यह काठो का मार्ग है। पर काठो पर चलने जाना ही फूल का सीकुराम्य और सुरभि पा सकता है। मैं प्रकट करता हूँ—अग्रगुणी बारी-बहिने अमना परि

याणामि, मग्ग उवसम्पवज्जामि' का सकल्प और 'सयम खलु जीवनम्' का घोष लेकर प्रस्थित हुए हैं, वे अपने साध्य तक पहुँचने में सफल होंगे।

[२५ अक्टूबर, १९५५ को उज्जैन (मध्य प्रदेश) में अणुव्रत-आन्दोलन के षष्ठम वार्षिक अधिवेशन में प्रदत्त दीक्षान्त प्रवचन]

शान्दोलन का घोष

प्राचार और विचार में बड़ा दो है बड़ा एक भी है । इनमें बड़ा पीर्वापर्य (पहले पीरे का भाव) है बड़ा नहीं भी है । विचार क प्रमुख ही प्राचार बनता है प्रथम विचार ही स्वय प्राचार का रूप मता है । कार्यवाही में मिलता है । पहले विचार और पीछ प्राचार । प्राचार मुझ नहीं तो विचार कैसे मुझ होना । मुझ विचार क बिना प्राचार मुझ मती बनता । प्राचार विचार क प्रमुख सम तब उतमें ईश नहीं रहना । विचार बीसा प्राचार मती बनता बहा में दो बन जान है । प्रथम है विचार और प्राचार में सामञ्जस्य पाये ।

कई व्यक्ति ऐसे है जिनमें विचारों की शकुरता नहीं है उन्हें प्रमाणों की आवश्यकता है । कई व्यक्ति जागृत है किन्तु उनकी मति समम की बिना में नहीं है उनकी मति बदलने की आवश्यकता है । कई व्यक्ति सही दिशा में है किन्तु उनके विचार केवल विचार तक ही सीमित है उन्हें साधन करने की आवश्यकता है ।

मूल बात है—प्राचार-मुक्ति की आवश्यकता । इसके लिए विचार व्यक्ति चाहिए । इसके लिए सही दिशा में मति और इसके लिए जानरख प्रेरित है ।

राजनीति की बात परिस्थिति को बदलना चाहती है और वह इसको बदल सकती है । मनुष्य का मार्ग संयम का मार्ग है । इसके द्वारा हमें व्यक्ति को बदलना है । परिस्थिति बदले इसमें हमारा विरोध नहीं किन्तु उसके बदलने पर भी व्यक्ति न बदले प्रथम हमारे पक्ष की ओर मुड़ जाये वह वाञ्छनीय नहीं । सामग्री के प्रमाण में जो कराहुता रहे वही उसे शकुर

विलासी बन जाये, यह उचित नहीं। समय की साधना नहीं होती, तब यह हाता है। समय का लगाव न गरीबी में है, न अमीरी में। इच्छाया पर नियंत्रण हो—यही उम्का स्वरूप है। इच्छाएँ सम्भव हैं, एक साथ नष्ट न भी हो, किन्तु उन पर अकुश तो रचना ही चाहिए। यकिनशाली और पूज्यपति वग का इच्छाया पर नियंत्रण करना है और अधिक सग्रह को भी त्यागना है। गरीबी के लिए अधिक सग्रह के त्याग की बात नहीं आती, किन्तु इच्छाया पर नियंत्रण करने की बात उनके लिए भी वैसी ही महत्त्वपूर्ण है जैसी गनी वग के लिए है।

बड़े या उच्च कहलान वाले वग के लिए यह चुनानी है कि वह मन्तापी बन। निम्न वग स्वयं उनके पीछे चरण। एसा नहीं जानता है तब तक दया-देखी या स्पधा मिटती नहीं।

विश्व की जटिल परिस्थितियाँ, मानसिक और आर्थिक वटनाया का पाल हुए भी क्या मनुष्य-समाज नहीं चरण? जीवन का नष्टरता और सुख-सुविधाया की अस्थिरता को समझते हुए भी क्या वह नहीं साचेगा?

जीवन की दिशा बदलन के लिए हम सबका एक घोष होना चाहिए—
“समय खलु जीवनम।” अगुन्नत-आन्दोलन का यही पाप है। जीवन के क्षणों में शान्ति आय, उसके लिए यह नितान्त आवश्यक है।

[१७ अक्टूबर, १९४८ का वम्बई में अगुन्नत-आन्दोलन के पंचम वार्षिक अविवेशन पर प्रदत्त मगर प्रवचन]

सुस्त-मुपित का उपाय

‘घाव वेध की एक विशिष्ट चारित्रिक योजना का चतुर्थ चापिठ अथि वेधन प्रत्यस्त उरसाह व उन्मासपूर्व वातावरण से प्रारम्भ हो रहा है। मुझे वे दिन याद है जब इस योजना का प्रथम अधिवेशन देहली के बाहरी पीठ में सम्पन्न हुआ था। उस समय ५ से अधिक भाई रोज़ना से प्रारम्भवादी व परमात्मा की माही से परिगत सुश्रावण व जगत रूपित वातावरण को मिटाने के लिए बृह सन्ध्य डोरर एक साव प्रगुञ्जत-योजना की ५ प्रति मामो को प्रहण किया था। उन्हात प्रगिज्ञा की थी कि हम अहिंसावादी बन कर हिंसावादी प्रवृत्तियों से बन्दर मोडा संगे उदाचार्य बनकर जन-जन में व्याप्त चोरबाजारी विस्फोटकारी व अप्टाचार से टकरा नेगे व नतिक भावनों को घपनाकर समाज में छाई हुई धनीतिकता के विरुद्ध एक कार्त्तिकारी संज्ञाम डेढ़ी। उन्होंने उस समय वेध के कोने-कोने में यह पदु का बिया कि नैतिकता के महायज्ञ में एक साव बृह सन्ध्य बन कर कैसे बृह पड़ना चाहिए। बस गम्भीर व धान्त अनुष्ठान के कारण राजधानी के वातावरण में एक नई पर्यव की गहर बीड़ गई थी। मुझे याद है उस समय त्यो के दिन मैं धरेक भावकाए सी भर क्रिये हुए थी। वे सोचते थे कि हम देखेंगे—‘घाव जो से पठी बने है वे दो दिन के बाद क्या करेगे ? मैं समझता हू बड़े धावका होनी कोई प्रस्वामाधिक बात नहीं थी। वेन का वो व्यानक नन्दा वातावरण है उसके विरुद्ध चार-पाव सौ व्यक्ति ही यदि कोई करम उठायें तो वह धावका से मुक्त कैसे हो सकती है ? किन्तु इसके धाव-धाव यह भी स्पष्ट है कि उन्होंने जो करम उठवाया था वह किसी डेठि या कानून के मय से नहीं अथिनु आत्मा व परमात्मा के मय से धान्त छाडी व धात्म प्रेरणा से उठाय

था। इसलिए मुझे विश्वास था कि यह कार्यक्रम बटेगा और लोग उसे अपनायेंगे। आज उमी भवना का यह मूर्तरूप है कि उम समय अगुत्रतियो की जो ५०० से कुछ अधिक सख्या थी, अब वह लगभग २०००० में अधिक बढ़ गई है। मुझे मख्या से कोई प्रेम नहीं है। मुझे प्रेम काम से है, वह होना चाहिए। सम्भवत ५००० के लगभग ऐसे व्यक्ति हैं जा कुछ नियमो को छोड कर सघ के काफी नियमो को निभा रहे हैं। मैं आशा करता हूँ वे भी अपने जीवन में पूरे नियमो को उतार कर डम चारित्रिक अनुष्ठान में आगे बढ़ने का पुनीत प्रयत्न करेंगे। इनके अतिरिक्त लाखो व्यक्ति ऐसे हैं, जो आन्दोलन की भावना से प्रभावित हैं।

इस वार यह चतुर्थ वार्षिक अधिवेशन राजस्थान के ऐतिहासिक नगर जोपुर में हो रहा है, जो मारवाड की भूतपूर्व राजधानी और मह प्रान्त का एक विशिष्ठ नगर है।

निर्भयता

आर्य पुरुषो ने प्राणी मात्र के अभीष्ट रहस्य का व्यक्त करते हुए कहा है—'सुहम या दुःख पडिउला' सब प्राणी जीवन में प्रम रखने वाले हैं, भरना कोई नहीं चाहता। दुःख किमी को भी त्रिय नहीं है। सब सुख और शान्ति से जीवन बिताना चाहते हैं। ऐसी स्थिति में प्रत्येक व्यक्ति का यह कर्तव्य है कि वह उस मार्ग की खोज करे, जिसमें वह अपनी अभीष्ट मजिल पा सके। मेरी दृष्टि में शान्ति और सुख का सहो और अनुपम मार्ग है, निर्भयता। यदि मनुष्य में निर्भयता होगी तो सुख और शान्ति उसके जीवन में स्वत उद्भूत होंगे। आज मनुष्य में निर्भयता नहीं दसी का ती परिणाम है कि मनुष्य मुछी नहीं है। वास्तव में भय क्या है? वह किस बात का है? इन प्रश्नो का अनेक लोग अनेक प्रकार से समाधान करते हैं। कोई मृत्यु को सबसे बडा भय बतलाते हैं और कोई जीवन की सघर्ष भरी व्यथाओ को। एक वार भगवान् महावीर ने समस्त निर्ग्रन्थो को एकत्रित कर पूछा, 'कि भया समणाउसो' हे आयुष्यमन् श्रमणो! कहो, सबसे बडा भय क्या है? सब अवाक् रह गये। सब अपनी-अपनी बुद्धि दौडाने लगे। किसी ने कुछ मोचा और किसी ने कुछ। अन्त में उन सबने भगवान् में प्रार्थना की—'खोजलु देवाणु

पिता एवम् वाखासो वा पासामो वा इच्छाशील नेवान् विमानं
 पत्निय एवमद्वा वाशितये — हे देवानुग्रिय । हम नम ज्ञान मे प्रतिभिन्न है
 भाग हमें हम बात से अभिन्न बनाये ।

मन्वान महावीर ने सिखो की प्रार्थना पर मूल रूप से उत्तर देने हुए
 कहा 'दुःखमया पारया समरणाहमा' + प्राप्पुष्यमन भवता । सबसे बड़ा मम
 'दुःख' है ।

शिखी ने फिर प्रश्न किया भाग मम दुःखसे क्या बड़े मन्वान् उस
 दुःख का करने वाला कीत है ?

मन्वान् महावीर ने उत्तर दिया 'वीरेण बड़े पमाण हे प्राप्पुष्यमन्
 भवसो । दुःख को करने वाली स्वयं पारया ही है और बड़े प्रमाद भवान्
 प्रसाधयती या अपने दुःखनवा का ही प्रतिफल है ।

दुःख के निराकरण का उपाय जानने के लिए शिखी ने पुनः प्रश्न किया
 'सैख्य बन्ने वरुने कद् वेरुग्रति मन्वान् दुःख के निराकरण का उपाय
 क्या है ?

मन्वान् महावीर ने मन्त्र से समाधान प्रस्तुत करते हुए कहा —
 'अप्यमाण' प्रमाद इत्य निवृत्ति का हेतु है ।

इन शब्दों के अर्थ में किता मन्त्रा तन्व शिखा पडा है । शिखा को न
 बारी से बड़ा मन्त्रोप हुआ । मन्वान् ने एक पद्य से यह स्पष्ट मन्त्र
 दिया कि सक्षर से सबसे बड़ा मम दुःख है । वही तो कारण है दुःख से
 सही मुक्ति चाहते हैं । भाव ही चाहते हैं ऐसी बात नहीं है । यह बाह प्रार्थी
 मात्र के साथ मरा लगी रहती है । सम्भवतः भाव इस बाह का विषय मूल्य
 है । इसका कारण यह है कि भाव का मनुष्य दुःखों की पराकाष्ठा पर पहुँचा
 हुआ है । उसके जीवन दुःख कावामन की चिन्ताओं में मुसला जा रहा है ।
 यह मनुष्य यदि दुःख से मुक्त होना चाहता है तो निर्मम बने । निर्मम
 बनने का मार्ग वही है कि मनुष्य प्रमाद से दूर रहे । प्रमाद का मार्ग जय
 मुक्त होने का राहमार्ग है । इसका बही प्रमाद रहित होता है । और जब
 प्रमाद रहित होना है तब वह सब प्रकार के दुःखारो को मुक्त कर सवा
 चाही बन जाता है । उसके व्यापार में सन्वाई होती है और वह किसी पर भी
 सत्वाचार नहीं करता ।

मदाचारी बनने और बन रहने में ब्रती को अनेक मृमीवना में लोहा लेना पड़ता है। मैं कवि की उम उक्ति को भूल नहीं रहा हूँ, 'जिम्न कहा ह--

'मीदन्ति मन्तो विरमन्त्यमन्त' मज्जन पुरुषों का जीवन बड़ी कठिनाय्या में उलझा रहता है, जबकि दुःखन लोग मनमा की मौन उद्यान रहते हैं। उनके साथ यह भी है कि मज्जन पुरुषों के सामने तो कठिनाय्या है, व म्यायी नहीं हैं और न दुःखन लोगों की मौज ही स्वाधी है। कुछ रात के लिए वह अन्तरेगर्दी छापी रह सकती है किन्तु अन्त म विषय मन्त की ही जानी है। 'मत्यमेव जयते' यही मन्त्र जगह कहा गया है किन्तु यह कहीं भी नहीं कहा गया है—'अनृतमेव जयते'। दुःखन के मुन्वी बनन की भित्ति जाखनी होती है, इसलिए उमका अन्तह त्य अपने दुष्कृत्या क लिए गता रहता है। केवल बाह्य सामग्री के आधार पर वह अरने को मुन्वी अनुभव काना है। गेमी स्थिति में एक मज्जन बाह्य सामग्री के अभाव के कारण उत्पन्न कठिनाय्या के बावजूद भी अन्तह दय में मुन्व और शान्ति की पवित्र राग में अपने आपको पावन अनुभव काना है। स्वल्प समय में ही उमका परिणाम यह निकलता है कि वह परीक्षोन्नीग होकर मज्जनता की महान् विजय कर अपने आपमें एक प्रभावशाली उदाहरण बन जाता है। कहने का मतलब यह है कि ब्रती को मय किम वान का है? वह अपने मही माग पर चलता हुआ न ता सरकार के कलक और आरोप का भाजन बनता है और न समाज का। क्योंकि वह सच्चा है और उसके व्यापार तथा अन्य प्रत्येक काम में सच्चाई का प्रश है।

मैंने सुना है, सहस्रो व्यक्तियों के बीच मँडडा अणुब्रती खड़े होकर कहते हैं कि अणुब्रती बनने के बाद सवने बडा अनुभव हमें यह मिला है कि हम निभय बन गये हैं। हम देखते हैं, अनेक व्यक्ति अपने अनैतिक व्यापार व व्यवहार के कारण बड़े भयभीत रहते हैं, उनका कलेजा हर समय धडकता रहता है और बट्ट्या के सरकार के चगुल में फस कर अपमानित भी होते रहते हैं—यह देखकर हमें अपने व्यवहार में और भी अधिक निभयता अनुभव होती है, हम निभयता पूर्वक हर जगह अपनी सच्चाई प्रस्तुत करते हैं। मैं यह नहीं मानता कि अणुब्रती पूर्ण निर्भयी बन जाते हैं। पूर्ण निर्भयी तो महाब्रती

यिमा एवमठ बालामो वा वालामो वा इच्छामीणु त्रैवाणु पियामां
 अन्तिए एवमठु आणितये — हे देवानुश्रित । इम इम वाग म अतिमित्त ।
 आप हर्मे इम वाग से अमित्त बनाये ।

मगवान् मग्नावीर ने सिध्या की प्रार्थना पर मूक रूप में उत्तर देने हुए
 कहा — 'बुलबुलवा वावा समरणाडना' — हे आधुप्यमन अमरगो । मगम बड़ा मग
 'बुल' है ।

सिध्या ने फिर प्रश्न किया 'मेरा अने बुलबुल केग कडे मगवान् उस
 बुल का करने वाला कौन है ?

मगवान् मग्नावीर ने उत्तर दिया 'जीवेग कडं पमाण — हे आधुप्यमन्
 मरगो । बुल की करने वाली स्वम आत्मा ही है और वह प्रमाद अज्ञान
 प्रतापबानी या अपने बुलबुलवा का ही प्रतिकल है ।

बुल के निराकरण का उपाय जानने के लिए सिध्या ने बुल प्रश्न किया
 'सेहा बन्ने वन्ने कत्तु वेइरवनि भगवन् बुल के निराकरण का उपाय
 क्या है

मगवान् मग्नावीर ने मत्तप में समायात प्रस्तुत करते हुए कहा —
 अण्णमाए अरमाए बुल-निवृत्ति का हेतु है ।

इन शब्दों का अर्थ है कि ज्ञाना द्वारा तब सिध्या पका है । सिध्या को यह
 बातों से बड़ा संतोष हुआ । मगवान् ने एक क्षण में यह स्पष्ट समझा
 कि उत्तर में सबसे बड़ा भव बुल है । यही तो कारण है बुल से
 सभी मुक्ति चाहते हैं । भाग ही चाहते हैं ऐसी बात नहीं है । यह चाह प्राणी
 मात्र के बाव मना सभी रहती है । सम्भवतः भाग इस चाह का विशेष मूल्य
 है । इसका कारण यह है कि भाग का अनुप्य बुल की पराकाष्ठा पर पहुँचा
 हुआ है । उसका जीवन बुल बाबानम की चित्तधारियों में भुलसा जा रहा है ।
 अतः अनुप्य यदि बुल से मुक्तता प्राप्त चाहता है तो निर्मक बने । निर्मक
 बनने का मार्ग यही है कि अनुप्य प्रमाद से दूर रहे । अणुवत् का मार्ग मग
 पुत्र होने का उपायार्थ है । इसका इती प्रमाद रहित होता है । और जब
 प्रमाद रहित होता है तब वह तब प्रकार के बुलबावों को उच्छेद कर सवा
 पाटी बन जाता है । उसने व्यापार में लक्ष्मी हीठी है और वह किसी पर भी
 अस्माचार नहीं करता ।

बनने से ही समझ है। पर भगवद्गीता का तात्पर्य उस नमरा ज्ञानाभिमुख होना है उसी प्रकार क्रमशः निर्मयी बनना भी। भगवद्गीता का यह विस्तार होगा—
बुद्ध-मुक्ति का उपाय निर्णयता ही है।

योगना प्राकाश से नहीं टपकती

धर्मयुत-योगना साम्प्रदायिकता मकीर्णता और जातिवाद से सर्वथा दूर है। फिर भी कुछ लोग यह भ्रासका किये बैठे हैं कि यह मानना तेषाच साम्प्रदाय के संचालक द्वारा प्रवर्तित होने के कारण साम्प्रदायिक है। यह कर्तरी मुक्ति धनत नहीं है। कोई भी योगना प्राकाश से नहीं टपकती। किसी जाति या सम्प्रदाय के किसी न किसी मानव प्राणी द्वारा ही उगमा प्रवर्तंग हुआ करता है।

महात्मा महावीर व गौतम बुद्ध ने किस ग्रहिया महासक्ति का एक नये प्रकार से प्रवर्तन किया क्या उनके कोई रीम या बौद्ध साम्प्रदाय प्रवर्तका द्वारा प्रवर्तित होने के कारण साम्प्रदायिक बना सकता है? जब कोई याचना व्यापक रूप लेकर सामने आती है तब क्या कारण है धर्मक स्थान से आने मात्र से उसे साम्प्रदायिक समझा जाने? मुझे याद है जबकि देहनी प्रवास में अनेक साहित्यिक लोग हैं मुझे प्रश्न किया था कि क्या एक भगवद्गीता के लिए यह प्रावश्यक है कि वह आपको गुरु माने और आपके चरणों में धर झुकाने? मैंने सबसे स्पष्ट बहा का कि मुझे न तो गुरु बनने की भूक है और न किसी को अपने चरणों में झुकाने की थी। यह महान् धर्मियान केवल चरित्र-मुक्ति और धर्म-मुक्ति के लिए ही धारम्भ किया गया है। यदि कोई व्यक्ति इन धर्मियान में अपना सक्रिय सहयोग धर्मियान करना चाहे तो वह किस अवधि का है, किस वर्ष का है, किस सम्प्रदाय का है ये प्रश्न मुझे बाधित नहीं करेंगे। मेरा यह बुद्ध विश्वास है कि कोई साम्प्रदाय किसी को भी नहीं उठा सकता। व्यक्ति स्वयं ही अपने को उठा सकता है। साम्प्रदाय किसी का निर्माण नहीं कर सकते। व्यक्ति स्वयं ही अपना निर्माण कर सकता है। यह प्रवर्तता की बात है कि बहुत से धर्मियान लोगों ने इसे प्रवर्तता पूर्वक अपनाया है। सहजो और साधो लोग इस योगना से प्रभावित हुए हैं और इस धर्मियान को धीरे-धीरे धार देखते सुनते और मनन करते हैं।

सुधार का केन्द्र व्यक्ति

अणुव्रत-आन्दोलन व्यक्ति-सुधार की योजना है, फिर भी हममें समाज, राष्ट्र और देश के कायाकल्प करने की शक्ति विद्यमान है। मैं मानता हूँ कि व्यक्ति-सुधार सब सुधारों की मूढ़ भित्ति है। अगर व्यक्त सुधार होता चला गया तो क्या समाज और राष्ट्र का सुधार पीड़ा रहगा? कुछ प्रगतिशील व्यक्तियों के लिए यह उलझन बन जाती है। वे सोचते हैं कि कैसे एक-एक व्यक्ति को ममका-बुझाकर अभीष्ट नदय तक कैसे पहुँचा जा सके? किन्तु मेरे लिए यह कोई उलझन नहीं है। मैं इस उलझन में विन्तुल नहीं उकानाता। मेरी मान्यता है कि आत्मिक सुधार या दूसरे शब्दों में कहना सुद्धि एक एक व्यक्ति को उठाये बिना सम्भव नहीं। समाज-सुधार की भावना व्यक्ति-सुधार के अभाव में व्यर्थ और योयी है। क्या बिना किसी बुनियाद या भित्ति के भी मकान टिका रह सकता है? इसलिए व्यक्ति सुधार और व्यक्ति की अन्त सुद्धि की यह योजना प्रारम्भ में नदी की धारा की तरह लघु होते हुए भी आगे चलकर नदी की विस्तृत धारा की तरह विशाल कार्य रूप लिए हुए है।

आज तक समाज सुधार की जितनी योजनाएँ बनाईं वे एक साथ सारे समाज का उत्थान करने के लिए नहीं। परिणामतः वे इसलिए सफल नहीं हो सकी कि उनमें मूल भित्ति को सुद्धि नहीं किया गया था। कोई मस्या, समुदाय या योजना एक साथ सारे व्यक्तियों का उत्थान और चरित्र-निर्माण नहीं कर सकती। इसलिए यह निश्चित है कि जब तक व्यक्तिगत चरित्र-सुधार पर ध्यान नहीं दिया जायेगा, तब तक सामाजिक विपमताएँ दूर होना सम्भव नहीं।

आर्थिक समस्या मुख्य नहीं

आज का युग अर्थ-प्रधान है। बहुत सारे लोग आर्थिक समस्या को ही देश की प्रधान समस्या मानते हैं। उनका कहना है कि अणुव्रत-योजना में आर्थिक समस्या का समाधान नहीं है। यह सुनकर मुझे इसलिए आश्चर्य होता है कि आज के भौतिकवादी युग में लोगों के सामने केवल आर्थिक समस्या का ही महत्त्व रह गया है। चरित्र-सुद्धि और आध्यात्मिकता से उन्हें कोई

मरतकब नहीं। लोग वहा तक भी कहते है कि यदि इस योजना में प्राथिक प्रश्नों को सुलझाने का कोई मार्ग नहीं है तो यह योजना व्यापक नहीं है। मैं समझ नहीं पाता कि व्यापकता का तात्पर्य क्या है? व्यक्ति-व्यक्ति के मस्तिष्क से जो बात टकराये वी व्यक्ति-व्यक्ति के मस्तिष्क तत्पुत्रा का म्ग म्ना हे क्या यह योजना व्यापक नहीं? आज तक का इतिहास बताता है कि किसी एक योजना को समूचा समार अपना कर लने यह न कभी हुआ है और न कभी होने वाला है। इतिहास के न जाने कितन-कितने प्रसिद्ध महारथी महापुरुष इस बरा पर आये किन्तु उनके एक क्रम के पीछे सारा समार जमा हो ऐसा कोई भी युग नहीं मिलता। हमें भी यह गर्व नहीं है कि हम समार का अपने पीछे जमाय। हमारा तो केवल मही मरम है कि बतहित साधक सर्वहित साधक और प्रारमहित साधक जो कुछ भी हमारे पास है उसे जन-जन के सामने प्रस्तुत करें। लोग उसे देख समझे बिचारें और अगर वह उन्हें भन्ना लगे तो प्रहस कर? आज जहा भ्रम्याय राज नैतिक प्राथिक और सामाजिक समस्याओं को सुलझाने की बड़ी-बड़ी योजनाएँ हैं वहा हमारी यह सब समस्याओं की एक चारित्रिक समस्या को सुलझाने वाली एक छोटी-सी योजना है।

मुख्य समस्या चारित्रिक

एक बात जो मुझे प्रथिक बम से कहती है वह यह है कि आज लोको का दृष्टिकोण बलत बम रहा है। लोग सोचते है कि अगर अर्थ वी समस्या सुलझ जाये तो सब समस्याएँ सुलझ जायें। मैं समझता हूँ यह वैसी ही बात है वैसी कि जब स्वराज्य मिलने के पूर्व भारतीय नेता सोचा करते थे कि स्वराज्य मिल जाये तो सब समस्याएँ सुलझ जायें। किन्तु स्वराज्य मिलने के बाद यह स्पष्ट है कि उनका यह सोचना गलत था। वृ कि आज समस्याएँ और कठिनाइयाँ इस रूप में पैली हुई हैं कि वे हमें मानने को तैयार नहीं करती कि स्वराज्य आने के बाद सब समस्याएँ सुलझ गईं और सुल का कल्पित स्वप्न साकार हो गया। आज भी मैं यही नेतावामी बना चाहता हूँ कि अगर जोर यह सोचें कि प्राथिक समस्याएँ सुलझी ही सारी समस्याएँ सुलझ जायेंगी तो यह सोचना बलत होना। इसके प्राय मुझे यह भी कहना

है कि आर्थिक समस्या के कारण ही सब समस्याएँ फैली हुई हैं, यह भी मैं नहीं मान सकता। यह दूसरी बात है कि आर्थिक समस्या ठीकी है या नहीं—मेरी दृष्टि में सबसे बड़ी समस्या चारित्रिक और नैतिक है। जिन देशों में आर्थिक समस्या का समाधान हो पाया है, वहाँ पर चरित्र और नैतिकता का पूरा विकास हो, ऐसा भी नहीं माना जा सकता। अतएव मेरी तो यह मान्यता है कि आर्थिक समस्या के कारण अन्यान्य समस्याएँ उत्पन्न हुई हैं, ऐसा नहीं, बल्कि मनुष्य की आन्तरिक विषमताओं के कारण ही उत्पन्न-ही आर्थिक व अन्यान्य समस्याएँ पैदा हुई हैं। इसी दृष्टिकोण का उचित अनुसरण-योजना मनुष्य के चारित्रिक विकास के लिए बनाई गई है। मेरा विश्वास है यदि चारित्रिक समस्या मुक्त हो तो अन्य समस्याओं का मुक्ति में विघ्नत्व न होगा।

समस्याओं का समाधान

एक समय था, जबकि भारतवर्ष समार की हर समस्या का मुक्ति का याचना रखता था व समस्त देशों के गुरु पद पर प्रामाणिक था, पर आज वह स्वयं समस्याग्रस्त है। आज हमारे सभी गरीब और कपड़े की समस्या में ही उलझ गये हैं। इस युग में भौतिकवाद का फल व फल हम तरह धूमा कि भारत ही क्या, सारा समार ही उनसे प्रभावित हो गया। यद्यपि रोटी की समस्या कोई छोटी समस्या नहीं है। मुझे बड़ा प्य था है—‘पुत्रभुक्तिर्व्याकरणं न भुज्यते, पिपासितैः काव्यरसो न पीयते’—भूखा और प्यासा, व्याकरण और काव्य में अपनी भूख और प्यास को नहीं बुझा सकता। फिर भी मेरी दृष्टि में इस समस्या का इतना महत्त्व नहीं है। मैं नहीं मानता कि आज समार एकमात्र अभाव के कारण ही दुःखी है। दुःखी होने का मुख्य कारण है, चारित्रिक पतन। आज जनता का नैतिक जीवन गिरता जा रहा है। जीवन के चारित्रिक मूल्यों को लोग भूले जा रहे हैं। फलन वेदमानी, अमत्य आचरण, अप्रष्टाचार जैसे दुर्गुण मानवीय जीवन का धुन की तरह खाये जा रहे हैं। वास्तव में असयत वृत्तियों के कारण ही अनेक समस्याएँ पैदा हुई हैं। अगर इन असयत वृत्तियों को सयत किया जाये तो अन्यान्य परिस्थितियों का समाधान भी मिल सकता है। यदि जीवन आडम्बरहीन,

समर्थ और सारा हो तो वस्तुओं का इतना प्रभाव नहीं रहेगा जिसको लेकर समस्या बढ़ी हो सके। मैं मानता हूँ कुछ पक्षों में बाह्य स्थिति सापेक्ष होते हुए भी मुख्यतः यह समस्या अन्तर-स्थिति सापेक्ष है। यदि अन्तर-स्थिति के परिमार्जन का प्रयास किया जाये तो मैं समझता हूँ यह समस्या बहुत छोटी और नगण्य प्रतीत होगी तथा इसके सुलझने में बिजम्ब नहीं होगा। अतएव प्रायः सबसे अधिक इस बात की प्राथमिकता है कि अनेकता की दानवीय नीति के विरुद्ध नैतिकता तथा सत्याचार के सहारे एक लड़ाई देखी जाये। अणुगत-प्रान्शोसन इसी तरह की एक सक्रिय और सजीव योजना है जो नैतिक प्रभुत्व और आर्थिक विकास को लेकर चलती है।

विरोध प्रवृत्ति का सूचक है

प्रत्येक अर्थी योजना में प्रायः विरोध भाता ही है। विरोध एक सखर्व है और सखर्व से ही उभोति पैदा होती है। जिस योजना का विरोध मती होता यह पनप नहीं सकती। विरोध से बबराने की कोई प्राथमिकता नहीं। विरोध से बबराने जाये कल्प हो जाते हैं और उठकर उठना सामना करने जाये विजय प्राप्त कर लेते हैं। इन बिना अणुगत-योजना का जो विरोध किया जा रहा है मैं समझता हूँ यह जो विरुद्ध ही नगण्य है। विरोधी बन्धुधो का कहना है कि 'प्राचार्यजी नाम प्रतिष्ठा और प्रख्याति के मुझे है और उसकी पूति के प्रान्शोसन के माध्यम से कर रहे हैं। मैं कहता हूँ उनको यह बात मुझे स्वीकार है। बच्चा बच-बच के विकास का काम हो और उसमें अणुगत नाम हो तो इसमें हानि और अचरने वीधी क्या बात है? मेरा तो यह सवा का सिद्धास्त है—“काम पीछे नाम बेबल नाम से मुकसान है। काम के पीछे नाम अपने प्राप होगा है किन्तु केवल नाम हानिमक है। नाम की भूल न रहते हुए काम में जुटे रहना हमारा उद्देश्य है।

कुछ लोग यह भी कहते हैं कि सानुधों को इन धोक-संग्रह के कायों में पढ़ने की क्या प्राथमिकता है? उन्हें तो अणु सेवा और ईश्वर अन्ति आदि में अणु सेवा अणु विठाना चाहिये। मैं मानता हूँ अणु सेवा और ईश्वर-अन्ति ह्राण हम अणु कल्याण कर सकते हैं पर संसार का नहीं। हमें यह सवा से ब्रिद्धा मिलती माई है कि हम अपने कल्याण के साध-साध पर-कल्याण की

करें। ससार का कल्याण और उसको सम्पादित करने की भावना अपने कल्याण से परे की चीज नहीं है। ससार का कल्याण हो चाहे न हो, हमें तो अपने सत्प्रयत्न का फल मिल ही जाता है। अतएव हमें विरोध को विनोद और प्रगति का शुभ संकेत समझ कर उसका स्वागत करना चाहिये। मुझे वह बौद्ध साहित्य का एक प्रसंग याद आ रहा है। गौतम बुद्ध का एक शिष्य घम-प्रचार के लिए बाहर जाने लगा। गौतम बुद्ध ने उसकी क्षमता की परीक्षा के निमित्त प्रश्न किया, “आयुष्मन् ! तुम बाहर चले जा रहे हो, तुम्हें कोई पुरुष गालिया देगा तब ?” शिष्य ने तत्काल उत्तर दिया, “भगवन् ! मैं सोचूंगा, चलो गालिया ही दी, पीटा तो नहीं।”

“अरे, कोई पीटेगा तब ?”

“मैं समझूंगा चलो पीटा ही हाथ-पैर ना नहीं ताड़े।”

“अरे, कोई हाथ-पैर भी तोड़ देगा तब ?”

“मैं समझूंगा चलो हाथ-पैर ही तोड़े, प्राणान्त तो नहीं किया।”

“अरे, कोई प्राणान्त कर देगा तब ?”

“मैं समझूंगा चलो प्राणान्त ही हुआ, मेरी आत्मा और उसके गुराणों का तो कुछ बिगड़ा ही नहीं।”

शिष्य के इन सरल व स्पष्ट उत्तरों को सुनकर गौतम बुद्ध ने पूरा प्रसन्नता के साथ आशीर्वाद देते हुए विदा किया और कहा—‘ऐसी लगन वाले शिष्य ही प्रचार-कार्य में सफल हो सकेंगे।’ इस प्रसंग से हमें यही शिक्षा लेनी है कि हम विरोधों से कभी घबरायें नहीं। हमें विरोध का प्रतिकार कार्य से करना है न कि थोथी आवाजों व अन्य गलत तरीकों से। हमें अपने गुरुओं से यही शिक्षा मिली हुई है कि विरोध के सामने विरोध लेकर बढ़ोगे तो विरोध बढ़ेगा और यदि उसको पीठ देकर अपना कार्य करते रहोगे तो वह अपने आप खत्म हो जायेगा।

मैं समझता हूँ यदि विरोध न हो तो दुतरफा काम कैसे हो ? श्रीमद् भिक्षु स्वामी से किसीने कहा—“लोग आपमें अवगुण निकालते हैं। स्वामीजी ने कहा—यह तो अच्छा ही है, हमारा दुतरफा काम हो रहा है। अवगुण हमें रखने थोड़े ही हैं। कुछ हम निकाल रहे हैं और कुछ लोग निकाल देंगे।”

सबसे और धारा ही ठो वस्तुओं का इतना प्रमाण नहीं रहेगा जिसको लेकर समस्या बढ़ी हो सके। मैं मानता हूँ कुछ घरों में बाह्य स्थिति सापेक्ष होते हुए भी मुलतः यह समस्या अन्तर-स्थिति सापेक्ष है। यदि अन्तर-स्थिति के परिष्कार का प्रयास किया जाये तो मैं समझता हूँ यह समस्या बहुत छोटी और नगण्य प्रतीत होगी तथा इसके मुलमूले में बिभत्स नहीं होगा। अतएव प्रायः सबसे अधिक इस बात की आवश्यकता है कि अनैतिकता की सामाजिक और के विरुद्ध नैतिकता तथा सदाचार के सहारे एक सड़ाई छेड़ी जाये। अणुव्यवस्था-आन्दोलन इसी तरह की एक सक्रिय और सजीव योजना है जो नैतिक धम्पुत्रय और आर्थिक विकास को लेकर चलती है।

विरोध प्रपत्ति का सुषक है

प्रत्येक प्रणाली योजना में प्रायः विरोध आता ही है। विरोध एक सपर्य है और सपर्य से ही ज्वोति पैदा होती है। जिस योजना का विरोध नहीं होता वह पनप नहीं सकती। विरोध से बदराने की कोई आवश्यकता नहीं। विरोध से बदराने वाले बदराने ही जाते हैं और उठकर उसका सामना करने वाले विजय प्राप्त कर लेते हैं। इन बिना अणुव्यवस्था-योजना का जो विरोध किया जा रहा है मैं समझता हूँ वह तो विरुद्ध ही नगण्य है। विरोधी बन्धुओं का कहना है कि आचार्यजी नाम प्रतिष्ठा और प्रख्याति के भूखे हैं और उसकी पूर्ति के आन्दोलन के माध्यम से कर रहे हैं। मैं कहता हूँ जन्मकी यह बात मुझे स्वीकार है। महात्मन के विकास का काम हो और उसमें अपना नाम हो तो इसमें हानि और बदराने जैसी क्या बात है? मेरा तो यह सदा का सिद्धांत है—“काम पीछे नाम केवल नाम से गुफसान है। काम के पीछे नाम अपने आप होता है किन्तु केवल नाम हानिप्रद है। नाम की भूख न रखें हुए काम में जुटे रहना हमारा उद्देश्य है।

कुछ लोग यह भी कहते हैं कि साधुओं को इन लोक-सपर्य के कार्यों में बढ़ने की क्या आवश्यकता है? उन्हें तो ज्ञान सेवा और ईश्वर-अभिष्टि चाहिए मैं अपना समय बिताना चाहिये। मैं मानता हूँ ज्ञान सेवा और ईश्वर-अभिष्टि द्वारा हम अपने कल्याण कर सकते हैं पर संसार का नहीं। हमें यह सदा से शिक्षा मिलती आई है कि हम अपने कल्याण के साथ-साथ पर-कल्याण भी

करें। ससार का कल्याण और उसको सम्पादित करने की भावना अपने कल्याण से परे की चीज नहीं है। ससार का कल्याण हो चाहे न हो, हमें तो अपने सत्प्रयत्न का फल मिल ही जाता है। अतएव हमें विरोध को विनोद और प्रगति का गुभ सकेत समझ कर उसका स्वागत करना चाहिये। मुझे वह बौद्ध साहित्य का एक प्रसंग याद आ रहा है। गौतम बुद्ध का एक शिष्य धर्म-प्रचार के लिए बाहर जाने लगा। गौतम बुद्ध ने उसकी क्षमता की परीक्षा के निमित्त प्रश्न किया, “आयुष्मन् ! तुम बाहर चले जा रहे हो, तुम्हें कोई पुरुष गालिया देगा तब ?” शिष्य ने तत्काल उत्तर दिया, “भगवन् ! मैं सोचूंगा, चलो गालिया ही दी, पीटा तो नहीं।”

“अरे, कोई पीटेगा तब ?”

“मैं समझूंगा चलो पीटा ही हाथ-पैर तो नहीं तोड़े।”

“अरे, कोई हाथ-पैर भी तोड़ देगा तब ?”

“मैं समझूंगा चलो हाथ-पैर ही तोड़े, प्राणान्त तो नहीं किया।”

“अरे, कोई प्राणान्त कर देगा तब ?”

“मैं समझूंगा चलो प्राणान्त ही हुआ, मेरी आत्मा और उसके गुणों का तो कुछ विगडा ही नहीं।”

शिष्य के इन सरल व स्पष्ट उत्तरों को सुनकर गौतम बुद्ध ने पूर्ण प्रसन्नता के साथ आशीर्वाद देते हुए विदा किया और कहा—‘ऐसी लगन वाले शिष्य ही प्रचार-काय में मफल हो सकेंगे।’ इस प्रसंग से हमें यही शिक्षा लेनी है कि हम विरोधों से कभी धवराये नहीं। हमें विरोध का प्रतिकार कार्य से करना है न कि थोथी आवाजों व अन्य गलत तरीकों से। हमें अपने गुरुओं से यही शिक्षा मिली हुई है कि विरोध के सामने विरोध लेकर बढ़ोगे तो विरोध बढ़ेगा और यदि उसको पीठ देकर अपना कार्य करते रहोगे तो वह अपने आप खत्म हो जायेगा।

मैं समझता हूँ यदि विरोध न हो तो दुतरफा काम कैसे हो ? श्रीमद् भिक्षु स्वामी से किसीने कहा—“लोग आपमें अवगुण निकालते हैं। स्वामीजी ने कहा—यह तो अच्छा ही है, हमारा दुतरफा काम हो रहा है। अवगुण हमें रखने पड़े ही हैं। कुछ हम निकाल रहे हैं और कुछ लोग निकाल देंगे।”

स्वामीजी का यह अप्रत्याशित उत्तर सुन कर पूछने वाला चुप रह गया ।

यह भी होता है कि जब मनुष्य अन्तर्गत मार्ग पर चमत्ता है तो उस वहाँ से फिस्फानने के लिए बहुत से व्यक्ति अनेक बाधाएँ उपस्थित किया करते हैं ।

बौद्ध समाज की एक घटना है जब एक राजा-जब स्याह कर पूरा समाधि प्रवस्था में पहुँचाने में — बौद्ध शास्त्रों में लपक पड़ी से अप्रमत्त होने लग — उस समय भीतरे ने उनको विचारात् करन के लिए अनेक प्रकार के समय और प्रलोभन दिखाये । किन्तु वे अपने मार्ग से तिस भर भी नहीं फिसलें । उक्त बात से सबको वहाँ शिक्षा मिली है कि पब-मन बाधाओं का पीरते हुए प्रागे बढ़ना है । विरोध और बाधाओं का रहस्य को समझने के बाद वे प्रवृत्ति के बाधक नहीं प्रत्युत प्रगति के साधक सिद्ध हुए हैं ।

आत्म ब्रह्म का सूत्र

अपुत्र-आत्मज्ञान का यही आदर्श है कि मनुष्य हुए का ब्रह्म करन का प्रवृत्त न कर । अपनी कुराह्या के अपने अक्षर बुद्धि को ब्रह्म का काचित्य करे । यही भववान् महावीर की वाणी है । यही गीतम बुद्ध ने कहा है और यही श्रीकृष्ण ने अथर्व गीता में बतलाया है । भववान् महावीर की वाणी में —

अप्या मेव ब्रह्मब्रह्मो अप्याहं जनु बुद्धो ।

अप्या इतो मुही होरे, अस्मि सोए परत्थए ।

‘मनुष्य को अपने आपका ब्रह्म करना चाहिये । वास्तव में यही कठिन है । अपने आपका ब्रह्म करने वाला इस लोक और परलोक में मुक्ति होता है । इसीलिए प्रागे कहा है—

‘अप्याण मेव बुद्धमहा किं ते बुद्धेण ब्रह्मसो

आत्मन् । यदि तू बुद्ध-वेदी है तो तुझे अपनी आत्मा के साथ ही बुद्ध करना चाहिये । बाहरी सप्राप्त से क्या लाभ है ? इसीलिए मनुष्य के लिए यही ब्रह्म है कि वह होवे—

‘अरं म अप्याइतो सवमेणं तवसु व ।

माहं पणेहिं ब्रह्मन्तो ब्रह्मेच्छाहिं बहेहिं व ।

‘अच्छ है, मैं पहले ही सबसे और उप के द्वारा अपने आप ही अपना ब्रह्म करूँ । अपर दूसरे सोए जब कल्याणिक से भेरा ब्रह्म करेयें तो फिर

क्या आनन्द रहेगा ?' वन्पुत्रा । उन ऋषि-वाक्या को पुन पुन याद रखिये । मेरा यह निश्चित अभिमत है कि चाहे कोई हो, कोई समाज हो या कोई राजता वाद हो या चाहे कोई कार्यक्रम, सारे ही तब तक सफल नहीं हो सकते व आगे नहीं बढ़ सकने, जब तक कि उनमें आत्म-दमन और आत्मानुशासन को बल व प्रयत्न नहीं दिया जाता । स समझना है यदि प्रत्येक व्यक्ति इस 'आत्म-दमन' के महत्त्वपूर्ण सूत्र का अपने जीवन में स्थान देगा तो इससे जीवन की समस्त विषमताएँ और समस्याएँ मिटेगी, मान्विकता, सदाचार, एव चरित्र-निष्ठा का विकास होगा जिसमें समाज एक अभिन्न शान्ति का अनुभव कर सकेगा ।

[१५ अक्टूबर, १९५३ का जायपुत्र (गजस्थान) में अरगुव्रत-आन्दोलन के चतुर्थ वार्षिक अधिवेशन के अवसर पर प्रदत्त मंगल प्रवचन]

आत्म चमन

यद्यपि जिन अगुजरी भाई बहिनो नं त्याग की आदर्श परम्परा को स्वीकार किया है वह कोई नई परम्परा नहीं है। भारतीय सस्कृति की यह मौलिक परम्परा प्राचीन काल से भारतीय जीवन का विद्युत् धारा रही है। भारतीय सस्कृति के अपासक व प्रसारक ऋषि-मुनियों ने इस परम्परा का दृढन किया और जिसका इतिहास प्राचीन काल की श्रुतियाँ में अत्यन्त सुन्दर रहा है। प्रसन्नता की बात है—प्रायः ही साधु-सन्ना के अतिरिक्त अपने नृह जीवन को समाप्त में करने वाले ऐसे भाई-बहिन भी समाज के सामने आये हैं जिन्होंने यह त्याग-प्रधान परम्परा को अपने जीवन में आगत कर आज के इस मीथिकनायी युग के सम्मुख एक प्रभावशाली चुनौती प्रस्तुत की है। पुराने गार्ह्य यह नये है—

ध्याता तु धनु समय रमिष्यन्तो सन्निभिर्याह सुसमाहर्षाह ।

धरमिष्यन्तो भाइपह उवेह सुरमिष्यन्तो सन्नु दुहास्य मुग्धर्ह ॥

यद्यपि इनको का कर्म से कर आत्मा की अस्मद् प्रकृतियों से उसकी हर पल रखा करनी चाहिये। जो आत्मा सुरक्षित नहीं होती वह विभिन्न बोनियों में अनेक प्रकार के कष्टों को बोनती हुई ससार में सटकती रहती है। जो आत्मा सुरक्षित होती है, वह धन दुःखों से कुटकारा पा लेती है। आत्म-निष्कामता का यह अपेक्ष भारतीय ऋषियों की वाणी का एक महत्वपूर्ण अङ्ग रहा है। कहा गया है—

न तं धरि कष्टवेला करेह नं से करे अप्यशिवो कुरम्या ।

सं नाहिर मन्नु मुह तु पते वन्नास्यु तावेत वपाविहृष्यो ॥

बिना अपकार यह अन्तःपत्ता करती है अतना अपकार एक-एक कष्ट

छेदने वाला शत्रु भी नहीं करता। इस दुराचारी आत्मा को अपन दुराचरणों का पहले ध्यान नहीं आता, परन्तु जब वह मृत्यु के मुख में पहुँचती है, तब अपने दुराचरणों को याद कर-कर पश्चात्ताप करती है। यही बात भगवद् गीता में इन शब्दों में कही गई है—

‘आत्मैव आत्मनोवन्धुर्गात्मैव रिपुरात्मन,
उद्धरेदात्मनात्मान् नात्मानमवसादयेत्।’

आत्मा ही आत्मा का मित्र है और आत्मा ही आत्मा का शत्रु है। ऐसी स्थिति में आत्मा को अनियन्त्रित छोड़ कर दुर्गुणों के प्रवाह में कभी बहने न दे। मुझे खुशी है कि आज अगुन्नतियों ने कुछ अंश में आत्म-नियंत्रण को अपना कर इम ऋषि-वाणी को सही करने का सफल प्रयास किया है।

वास्तव में अगुन्नती वे ही बन सकने हैं, जिनकी अहिंसा आदि सदाचार-मूलक वृत्तियों में निष्ठा होती है। अगुन्नत-योजना में अहिंसा आदि के प्रति श्रद्धा को गहरा स्थान दिया गया है। यह योजना मानव-जीवन की एक मर्यादा— एक मापदण्ड है। ‘मानव कौन?’ वही जो अगुन्नती है। अगुन्नतो का स्तर उस सीमा को झूने वाला है कि जिसमें बाहर रहने वाला व्यक्ति मही अर्थ में मानव और नागरिक नहीं कहना सकता। अगुन्नत के साथ जो ‘आन्दोलन’ शब्द जोड़ा गया है, उसका तात्पर्य यही है कि उसके द्वारा जन-जन में प्रेरणा, स्फूर्ति और उत्साह जागृत किया जाये। यह इसलिए कि आज लोगों के जीवन में इन चीजों का बहुत बड़ा अभाव दृष्टिगोचर हो रहा है। मैं चाहता हूँ— अगुन्नतियों यानि नैतिक व्यक्तियों को हर तरह में बल-प्रदान किया जाये। नैतिक व्यक्तियों का संगठन जितना बलवान होगा, उतना ही समाज, देश और राष्ट्र का नैतिक स्तर उन्नत और मस्कारित बनेगा। इसलिए मैं सबसे आह्वान करूँगा कि वे अपने आपका आन्दोलन समझ कर इसे आगे बढ़ाने के लिए पूरा-पूरा सहयोग प्रदान करें। यह नैतिक आजादी की लड़ाई है और इसमें सक्रिय भाग लेकर इमको सफल बनाना प्रत्येक व्यक्ति का मुख्य कर्तव्य है। इस लड़ाई में बलिदान चाहिये, किन्तु मनुष्यों का नहीं, बल्कि मनुष्य के दुर्गुणों का, बुराईयों का और स्वार्थों का।

कुछ शब्द अगुन्नती भाई-बहिनो से भी कहना चाहूँगा। आप लोगों ने

मजबूत मनोबल हो ऐसा, .
 कायरता कभी न लाये हम ॥

इस भावना को लेकर अणुद्विती निष्ठापूर्वक आगे बढ़े । उन्हें हर पल आत्म-चिन्तन और आत्मानुवन करने रहना चाहिये । प्रतिक्षण यह ध्यान रहना चाहिये कि कहीं नियमा मे भंग तो नहीं हो रहा है । उनकी निगरानी के लिए उनके पीछे न तो कोई सिपाही है और न कोई नी आई डी ही आयेंगे और न मै या कोई साधु-साव्वी ही । उनकी अपनी आत्मा ही उनके साथ रहेगी । स्वय को ही अपने पर नियन्त्रण रखना होगा । वे दृढ निष्ठा और मजबूत आत्मबल के साथ अपनी मर्यादा को समभदारी पूर्वक पालते हुए आगे बढ़ते जायें तथा औरो के लिए एक प्रभावशाली प्रेरणा प्रस्तुत करे । चरित्र-निर्माण की इस पुनीत जल-पारा को अपने जीवन के जल कण समर्पित कर आगे अग्रसर करने का एक प्रभावशाली प्रयास करे ।

[१८ अक्टूबर, १९५३ को जोधपुर (राजस्थान) मे अणुद्विती-आन्दोलन के चतुर्थ वार्षिक अधिवेशन के अवसर पर प्रदत्त दीक्षान्त प्रवचन]

दुग्धिधाओं से परामुक्त न हों

परमुक्त-योजना नाम की गई। इसका प्रसार हुआ। लोगों में धारणा बानूति आई। समाज में इस बात मची। लोगों ने योजना की सराहना की। विरोध करने वालों ने विरोध भी किया। कहा—क्या भावबोधकता की ऐसे सब की व्यवस्था करने की? क्या सामुहिक को सब संचालित करना उचित है? पर धारणा बनता ही जीवन-उत्थान जैसे ही धार्मिक मुक्त धीर साक्षि जैसे मिले बहु जागता जाहूरी है। उसके विभाग में ये निकम्मे ठरक नहीं करते। वे तो विभाग से समझते हैं और मज्जा से उन्हें अपना लेते हैं। इन तर्कों को तो उन लोगों के लिए ही खोज देना चाहिए, जिनके विभागों में ये उत्पन्न होते हैं।

सामुहिक-सर्व धीर समझी योजना ठीक उसी तरह सम्बन्धित है जैसे भावक-सर्व धीर समझी योजना है। भावकपन नहीं तो है जिसमें त्याग है जीवन को सर्वममय बनाने का प्रयत्न रहता है। ऐसे ही व्यक्तियों का सर्व भावक-सर्व है। मगवान् महावीर न भावक-भाविका सामु-साम्प्री सब की स्थापना की थी और उनका संचालन किया था। तीर्थ करो भाचार्यों धीर सामु-सर्वों द्वारा उनका संचालन हुआ है धीर हुआ। पर वे भावक भी भूहन्त्र ही होते थे। लौकिक कार्य भी करते थे। विवाह-साखी उत्सवादि सभी करते थे। वे कार्य भावकपन में नहीं। इसका संचालन वे नहीं करते थे। ठीक इसी तरह मगुवर्ती-सर्व है। इसके त्याग का संचालन हम करते हैं। हम ही नहीं भूवकास में तीर्थकरो एवं भाचार्यों द्वारा मगुवर्ती का—छोटे-बड़े वर्तों का प्रसार हुआ है धीर होमा।

शिव नि-संकीच मगुवर्ती बने धीर उनका सामन्तपूर्वक पालन किया। इसका मतलब यह नहीं कि उन्हें भाचार्यों का सामना न करना पड़ा हो। वे भाव के इस बाधोवरुद्ध के प्रति विचारहीन बने धीर की मूल लक्ष्य का उद्दि

नहीं छोड़ा। इसी तरह नये बनने वाले अगुव्रती भी प्राने वाली रुठिनाइयो को चीर कर उन पर विजय पायें। उनके सामने हार कर मिर न भुका दें।

त्याग की होड

आजकल लोग आडम्बर, आरम्भ व फिजूलखर्ची में होट करन के लिए तैयार रहते हैं। उन्हें चाहिये कि वे त्याग में हाड करें। एक व्यक्ति अगुव्रती बनता है तो दूसरा भी बनने की भावना लेवे। किन्तु इस युग में लोगो की मनोवृत्ति कुछ भिन्न हो चली है। उन्हें जहा कुछ अर्थ-नाम होना हो, स्वार्थ सघता हो, वहा तो बिना प्रेरणा के ही तत्पर हो जाते हैं। कुछ लोगो ने पहले-पहल वर्ष की फँटरी खोली। उसमें काफी खाम हुआ। लोगो में यहा तक होड लगी कि छोटे-छोटे कस्बो तक में फँटरिया गुल गई। लोगो को चाहिये था कि वे इसमें (अगुव्रती-सघत्ते) भी बिना कियो प्रेरणा के स्वत आते। पर यह कार्य आसान नहीं। दुविधाओं से भग है। फिर भी जो आत्मिक सुख, शान्ति और निर्भीकतामय जीवन बनाना चाहता है, उसके सामने वे कुछ भी नहीं है। अत अधिक में अधिक व्यक्ति अगुव्रती बनें। यदि आजीवन के लिए वे त्याग न भी कर सकें तो साधना ही करें और देखें कि शान्त और उन्नत जीवन के लिए अगुव्रत कितने जरूरी है।

महाशठ

कुछ व्यक्तियों का जीवन ऊपर में सीधा-साधा लगता है। मच पर वे अच्छा भाषण देते हैं, पर उनके अन्तर में जो बुराइया होती हैं, उनकी गणना तक कर सकना कठिन है। सूत्रकृताग सूत्र में एक जगह आया है—कुछ देखने में और, प्रवचन-पडाल पर बोलने में तो शुद्ध मालूम देते हैं, पर पर्दे के पीछे वे जो पाप, दुष्कृत्य और अनथ आदि करते हैं, उनसे उनकी आत्मा सकोच तक नहीं करती। ऐसे शठ, उन व्यक्तियों से कही अधिक खतरनाक है, जो इन कार्यों में ख्याति-प्राप्त हैं। वह छिपा गड्ढा है। एक गड्ढा दीखता है, उसमें जान-बूझकर कोई नहीं पड़ेगा, परन्तु उस पर यदि चादर बिछा दी जाये और बैठने के लिए कहा जाये या किसी को बिठाया जाये तो वह उसमें गिर जायेगा। यही नहीं, वह कहेगा मेरे साथ घोखा किया गया। ठीक इसी तरह छिपा दुराचार करने वाला महाशठ है। वह यह समझकर कि मैं भी एक प्राणी हूँ, मुझे

भी एक दिन मरता है, वहीं नहीं रहता है इस कृति का छोड़ दे। वह अपने पेट में रही कुरी-कुरीयों को निकाल दे। शम्भूबा वह मरपियों की बाणी में तो पापी है ही पर लोक दृष्टि में भी निम्ननीय है।

कपनी धीर करनी का समान भाव

यदि जल-जीवन को उठाना है तो कपनी धीर करनी को समान बनाना होगा। करनी से पूर्व कपनी प्रकृति-विरुद्ध है। एक बच्चा भी ठमी बोसता है, जब वह करता सीक सेना है। यह इसका प्रथम प्रमाण है। आज के तपाकथित सुधारकों में इनकी बड़ी कमी है। वे लम्बे-लम्बे मापण बैठे हैं पर वे स्वयं उन सिद्धान्तों का कितना पालन करण है यह प्रश्न केवल लर्क के सहारे समा जान नहीं पाता। इसलिय कहते हैं पूर्व से अपने जीवन को टटोमें कपनी के अनुकूल बनाने धीर जलता को फिर अपने पीछे ले चलन का प्रयत्न करें।

[२३ सितम्बर, १९२२ को सरदारवाहर (राजस्थान) में प्रगुवन-ध्यात्वी मत के तृतीय वार्षिक अधिवेशन में प्रबल मन्त्र प्रवचन]

आर्थिक दृष्टि के दृष्टिकोण

अगुवती-मध का पहला वार्षिक अचिवेशन दिल्ली में हुआ । हमारा लुधियाना की इस पुण्यभूमि में हो रहा है । आप कहेंगे—जहाँ थोड़े समय पूर्व अमानवीय हत्याकाण्ड हुआ, वह भूमि भला पुण्यभूमि ? अवश्य अहिंसा के प्रतीक माधु-साध्विया जिम भूमि पर बैठे हैं और जहाँ अहिंसानिष्ठ अगुवती-मध का अचिवेशन हो रहा है, क्या मैं उस भूमि को पुण्यभूमि न कहूँ ?

जनता इस कार्यक्रम को मौखिक भाषण या कौंगी कागजी कार्यवाही ही न समझे । यह चरित्र-मुधार का स्थायी रूप है । अगुवती जो प्रतिज्ञाएँ स्वीकार करते हैं, वे दिल में करते हैं और उनका पूर्ण रूप में पालन करते हैं ।

यह सब बुराइयों के मूल पर प्रहार है । लोग यह नहीं समझ रहे हैं कि बुराई क्या है ? दृष्टिकोण गलत हो रहा है, बुराई यही है । आज की दुनिया की दृष्टि धन पर टिकी हुई है । धन के लिए ही जीवन है, लोग यों मान बैठे हैं, यही दृष्टि-दोष है—नास्तिकता है । जीवन का मूल्य धन-संग्रह नहीं, वह अमूल्य है । जो वस्तु जैसी नहीं, उसको वैसी मान लेना ज्यों मिथ्यात्व है, त्यों साधन को साध्य मान लेना क्या नास्तिकत्व नहीं ? धन जीवन के साधन में से एक है, साध्य तो है ही नहीं । उक्त दृष्टि-दोष का परिणाम पहली मजिल में घोषण और आखिरी मजिल में युद्ध है । व्यापारियों में ब्लैक, राज्यकर्म-चांगियों में रिश्वत, राजनैतिकों में स्वार्थ और पक्षपात आज असाध्य रोग बने हुए हैं । इनकी चिकित्सा के लिए दृष्टिकोण को बदलना आवश्यक है । त्याग और समय के सहारे आगे बढ़ना सम्भव है, अन्यथा नहीं ।

अगुवती-योजना जीवन-विक्राम की एक दृष्टि है, एक सिद्धान्त है । भारत

स्वतन्त्र बल बुझा किन्तु व्यक्ति स्वतन्त्र नहीं बना। धान्तरिक स्वतन्त्रता के बिना बाह्यी स्वतन्त्रता पूर्ण रूप से सफल नहीं हो सकती। यही कारण है कि लोगों को प्राजायती का वैसा आनन्द नहीं आता वैसा वे सोचते थे। पर तन्त्रता का मूल कड़ा है और नया है जहाँ इसे नहराई से खोजना होगा। मैं विस्तार में नहीं आऊंगा। प्रायः यही तो कम प्रासिद्ध यह मानना होना कि मनुष्य प्रायतः का बाध बना हुआ है और यही परतन्त्रता का बीज है।

योग कहते हैं—जकरत की बीजे कम है। रोटी नहीं मिलनी कपड़ा नहीं मिलता यह नहीं मिलता यह नहीं मिलता। किन्तु मेरा मनुष्य कुछ और है। मैं मानता हूँ कि जकरत की बीजे कम नहीं। जकरतें बहुत बढ़नी संभव यह है। इसमें से प्रत्यासि की बिनबारी निकलती है। एक बार नहीं प्रत्येक बीजो पर कम्प्लेक्स है पर उससे बने नया जब तक कि जमता अपने प्राय इन्डिबो पर और मन पर दूसरे शब्दों में प्रतैतिकता पर कम्प्लेक्स न करले। सफलता की मूल पूंजी बनता की भावना है। उसका विकास समयमूसक प्रवृत्तियों के अनुसंधान से ही हो सकता है।

नैतिक उत्थान व्यक्ति तक ही सीमित रहा तो उसकी पति मन्त्र होनी। इसलिए इस विद्या में सामूहिक प्रयास आवश्यक है। यह प्रश्न हो सकता है और होता भी है। इसका उत्तर भी सीधा है—मैं न तो राजनीतिक नेता हूँ न मेरे पास कानून और न उद्योग का बल है। मैं तो अपनी आत्मा का नेता हूँ। मेरे पास आत्मानुष्ठान और प्राप्यात्मिक बल है। उद्योग के बल पर होने वाला कार्य त्वाभी और स्वतन्त्र नहीं होता। कानून बनाने वाले बनाते रहते हैं लोक उसकी धन-परीक्षा करते हैं, माना रास्ते खोजते हैं। सरकार आज बाल पर बसती है तो बनता पसे-पसे पर। काम कैसे बने? नैतिकता और मानवता का आचार हृदय-मुक्ति है। हृदय बरसे बिना कोई कामभी कार्यवाहियों से कुछ बनने का नहीं। लोक बुलाई को बुलाई समझ कर ही चुप न रहे। उससे मुख्य तब अपनी आत्मा का शाब-शाब समाज और राष्ट्र का भी पतन होता है। इसलिए उसे खोजें।

बहुत शोक कहते हैं—संयुक्ती-संघ सम्झा है। नियम बड़े सुन्दर हैं। इससे हृषाण बड़ा सम्भाव्य ही लगता है। किन्तु मैं किसी के केवल मौखिक सहयोग से ही सम्झल होने वाला नहीं हूँ। मुझे सक्रिय सहयोग चाहिये। बचपन से

अपेक्षा है कि नैतिकता के इस यज्ञ में वह अपने स्वार्थों की आहुति दें । इससे सबका कल्याण होगा ।

युग की कठिनाइयों के बावजूद भी सघ के सदस्यों की संख्या इस वर्ष ६०० से बढ़कर १००० तक पहुँच चुकी है । यह सघ की सावभौमता और सत्यनिष्ठा का ही परिणाम है । यद्यपि मुझे संख्या का मोह नहीं है, फिर भी सत्याचरण के साथ-साथ यदि संख्या बढ़े तो वह विशेष महत्त्व की बात होती है ।

अगुव्रती-सघ का सभी दृष्टियों से विकास हो रहा है, यह प्रसन्नता की बात है । अगुव्रती भाइयों और बहिनो ने कठिनाइयों से लड़ने में जो नैतिक बल रखा, उसका हार्दिक स्वागत है । अगुव्रती भाइयों और बहिनो ! आगे भी जमाने की कठिनाइयों से आपको लड़ना है और विजयी बनना है । उनके सामने घुटने नहीं टेकने हैं । मुझे विश्वास है कि आप अपने लक्ष्य में पूर्णतया सफल होंगे ।

[३ मई, १९५१ को लुधियाना (पंजाब) में अगुव्रती-सघ के द्वितीय वार्षिक अधिवेशन में प्रदत्त मंगल प्रवचन]

हो गये थे। फिर उसका पता चला, पर बाद में क्या हो ? अब उसकी आलोचना करना चाहते हैं। कुछ एक ने कहा—अक्सर हमारी यह प्रवृत्ति थी कि बच्चों को बहुधा मार पीट देते थे, पर अगुव्रती होने के बाद हमारी इस प्रवृत्ति में बहुत अन्तर हुआ है, तथापि दो-चार बार इस वर्ष की अवधि में ऐसी प्रवृत्ति हुई है। सभी ने कहा हम अपनी इन त्रुटियों का प्रायश्चित्त करना चाहते हैं। इन सब बातों को सुनने से यह प्रतीत हुआ कि अगुव्रतियों के जीवन में काफी परिवर्तन हुआ है और बुरी प्रवृत्तियों को अतिशीघ्र छोड़ने की भावना जागृत हो उठी है। उन्होंने अपना अनुभव सुनाते हुए कहा कि अगुव्रती होने के बाद हम निर्भय बने हैं और जीवन की जटिल पहलियों को सुलझा रहे हैं।

कुछ अगुव्रती ऐसे भी मेरे पास आये, जिन्होंने इस वर्ष गलती नहीं की। यह सभी के लिए हर्ष की बात है। लेकिन जिन अगुव्रतियों की गलती हुई है, उनके बारे में यह नहीं सोचना चाहिये कि इन्होंने गलती की है और ये गलती करते रहते हैं। जान-बूझकर कोई गलती नहीं करना चाहता। अज्ञानवश कभी किसी की त्रुटि हो जाती है। सब समान नहीं होते। हाथ की अगुलिया भी एक समान नहीं होती, उसी प्रकार अगुव्रती भी सब समान नहीं होते। किसी की कभी अज्ञानवश त्रुटि हो जाती है, पर उसके पीछे बेपरवाही नहीं होनी चाहिये। त्रुटि के प्रति आत्मालोचन की एक तडफ होनी चाहिये। सभी अगुव्रतियों को आवश्यक है कि वे कभी भी कोई गलती न करें। यदि अज्ञानवश हो भी जाये तो उससे निवृत्त होने का प्रयत्न करें। गलती होना कोई इतनी बड़ी बात नहीं, पर उसको स्वीकार न करना या उस पर आत्म-ग्लानि न करना मूर्खता है। वह सध के प्रति एक लाछन का कार्य है। हमेशा सचेष्ट रहना चाहिये कि ऐसी प्रवृत्ति न हो जाये, जिससे सध को लाछन लगे। मुझे अधिक व्यक्तियों की आवश्यकता नहीं, यदि वे ग्रहण किये हुए नियमों को पूर्ण रूप से न पालते हों। मैं थोड़ी ही सख्या में अधिक कार्य समझूंगा। यदि सध में आये हुए व्यक्ति अपने कर्तव्य-पथ पर हट कर नियमों को पालते हुए आगे बढ़ेंगे। मैं बहुत बार कहता हूँ—मुझे सख्या का लोभ नहीं, जितने भी अगुव्रती हों, सच्चे हों और अपने आदर्श पर-

प्रयोग करने वाले हो।

भाव का मुक्त विपणन है। एक-एक समस्मा प्राणी है और बढ़ती जाती है। उसका जोड़ा भी हम दृष्टिबोधर नहीं होता। मुक्त की प्रतिबिम्ब को देखते हुए भागे बढ़ना कोई और निबन्ध करना दुष्कर ही नहीं। अपितु दुःसाध्य-सा प्रतीत होता है। तो भी बड़े हर्ष की बात है कि यह धामु-समाज उन सब विपत्तियों को देखता हुआ अपने लक्ष्य-बिन्दु की ओर अग्रसर हो रहा है जब कबो नहीं मुक्त का सामना करते हुए अग्रगुप्ती उसमें भागे बह पायेंगे।

हासी अधिवेशन के प्रवचन पर यह आश्चर्य किया गया था कि प्रत्येक अग्रगुप्ती को पाष-पाष अक्षरती बताने का यथासम्भव प्रयत्न करना होगा। मैं पूछना था कि इस ओर कितने व्यक्तियों ने प्रयास किया तथा सब की ओर कितने व्यक्तियों को आकृष्ट किया। यह प्रत्येक को आश्चर्य होगा कि वे इसके लिए तैयार प्रयत्नशील रहें।

आमापी अधिवेशन के लिए कुछ सोचा जा रहा है जब करना चाहिये। उसके लिए कई सुझाव आये हैं। उनमें एक सुझाव यह भी है कि आमापी आश्रम मास में अधिवेशन होता चाहिये। इसके लिए अभी तक कुछ सोचा नहीं गया है। यह विचारार्थी है। आगे इस पर विचार किया जानैगा कि वह किस मास में और कहा होना चाहिये।

[२ मई, १९५१ को लुधियाना (पंजाब) में अग्रगुप्ती-संघ के द्वितीय वार्षिक अन्तर अधिवेशन में प्रवचन सम्बन्ध]

जीवन का मोह और मृत्यु का भय

अगुव्रती-सध एक आत्मोन्मुख सस्था है । इसका व्यय चरित्र-विकाम है । यह आचारात्मक सस्था है, प्रचारात्मक नहीं—इस बात को सामने रखते हुए अगुव्रतियों को प्रगति पथ पर बढना है जीवन को आगे बढाना है । जिस काम के करने से आत्मा का निर्माण हो, ऐसा काम अगुव्रतियों को करना है और उसीके अनुसार समाज व राष्ट्र का निर्माण करना है ।

एक ओर वर्तमान परिस्थितियाँ हैं, दूसरी ओर अगुव्रतों का कठिन मार्ग है । भगवान् श्री महावीर की उक्ति है—‘जब दुनिया अनुस्रोतो मे बहती हो तो भव्य-आत्मा प्रतिस्रोत मे बहे ।’ आज अगुव्रती को समूची दुनिया की परिस्थिति के प्रतिकूल बहना है । किन्तु कठिनाइयो से घबराने की आवश्यकता नहीं है । कठिनाइयो को धैर्य से पार करना होगा । धैर्य-धारी मनुष्य सभी कठिनाइयो से साधारणत मुक्त हो जाता है और धैर्य-हीन व्यक्ति अपने आपको खो देता है । वैसे तो कठिनाइया कुछ नहीं हैं, वैसे बहुत कठिनाइया है । यदि जीवन उसी पुराने ढाँचे मे चलता रहा तो बहुत कठिनाइया है और यदि जीवन बदल दिया गया तो कोई कठिनाई रहने वाली नहीं है । कठिनाइयो पर विजय पाना है तो जीवन को बदलना होगा । कोई यह मोचे कि जीवन पुरानी शान-शोकत और आडम्बर मे ही चलता रहे तो कठिनाइया घटने वाली नहीं है । आडम्बर हटा तो फिर जीवन मे कोई विशेष कठिनाई रहने वाली नहीं है ।

अगुव्रतियों को यह भूल जाना चाहिये कि वे पहले क्या थे ? ठीक उसी तरह जिस तरह मुनि बनने वाला व्यक्ति अपने पुराने जीवन को भूल जाता है । इस विचार को यदि याद रखा गया तो जीवन अधिकाधिक समुज्ज्वल

तथा प्रादुर्भाव होता। अगुजरी बनने के बाद जीवन संमोत्सुख होता है। अगुजरी को अपने प्रसयमोत्सुख विषय जीवन का चिन्तन भी न करना चाहिये तथा उस समझ की प्रवृत्तियों पर ध्यान नहीं देना चाहिये। उसे अपना ऐश्वर्य प्रशान्त पक्ष जीवन मूख मानना चाहिये। क्योंकि उसका विषय और वर्तमान का जीवन कोई मेस नहीं था सकता। अगुजरी बनने के बाद व्यक्ति को अपने क्रम में परिवर्तन करना होता है। बड़ा स्वतन्त्र बुद्धि का धनरोध होता है और नियमितता का प्रारम्भ। विस्तीर्ण आकाशाओं को सन्तोष कष्ट में समेटना होता है।

प्राण मत् सर्वमाभ्य मिश्रान्त नम नुका है—'जीयो और जीने दो'। यह साधारण जनता का सिद्धान्त है। अगुजरीयों का प्रादुर्भाव तो इससे ऊंचा है। उनका दृष्टिकोण है—जीवन को बरसो सुचारो। पक्षि का जीना या मरना अपने प्राण में विद्येय महत्त्व नहीं रखता है। व्यक्ति बहुत समय तक जीवित रहकर भी जीवन का उत्थान नहीं कर सकता और क्षण भर बाद मर कर भी अपना कर्मचार्य कर सकता है। अगुजरी के सामने मरने व जीने का प्रश्न नहीं है। प्रश्न है—ऊंच उठने का व आदरस बनने का। 'जीयो और जीने दो' का सिद्धान्त छोटा सिद्धान्त है। अगुजरी को न जीवन के प्रति मोह रखना है और न अर्थकामिक जीवन की आकांक्षा ही। न उसे मृत्यु से डर है और न मन में किसी प्रकार का लोभ भी। उसे तो मोह और लज दोनों से ही ऊंचा उठना है, महान् बनना है।

प्रतिष्ठा की भूख अस्मक ध्याधि

अगुजरीयों की अपनी प्रतिष्ठा है ही किन्तु उन्हें प्रतिष्ठा की भूख नहीं रखनी चाहिये। यह अस्मक ध्याधि की तरह का रोष है। लक्ष्मी की भूख की बाधा बाधे मरम हो जाना है। प्रतिष्ठा की भूख रोध बढ़ाती है और वह जीवन को विबुद्ध नहीं रखने देती। अगुजरी को भूख एक ही होनी चाहिये—जीवन विमर्श करना बुद्ध्यापूर्वक अपने जीवन को ऊंचा उठाना।

प्रत्येक अगुजरी अपना उत्तरदायित्व समझे। उसे समझना चाहिये कि सब का उत्तरदायित्व सभी सबलों पर समान है। एक अगुजरी की मूल तककी भूल है। जिस तरह एक बाघ किसी छात्र की कुलाई को देखे और वह यदि

उसे सावधान न करे तो स्वयं दोष का भागी बन जाता है, उसी तरह प्रत्येक अणुव्रती को भी यदि वह दूसरे अणुव्रती में त्रुटि देखता है तो सहृदयता के साथ उसे सावधान कर देना चाहिये। अणुव्रती को तनिक-सी भूल को भी स्थान नहीं देना चाहिये। अणुव्रतियों का सर्वतोर्ध्व लक्ष्य है कि वे अपने आप पर नियन्त्रण रखें और नियमों का विधिवत् पालन करें।

प्रत्येक अणुव्रती पाँच अणुव्रतों और बनाय। मान लिया जाये कि कोई अणुव्रती नहीं बना पाया तो भी उसे अपने आप में दृढ़ रहना चाहिये। वह अपनी मूल पूजा तो नहीं खोएगा। हमेशा मूल पर दृढ़ रहा। मुख्य लक्ष्य यही समझो और फिर प्रचार करो।

[२४ सितम्बर, १९५० को हानी (पञ्जाब) में अणुव्रती-संघ के अर्ध-वार्षिक अधिवेशन में प्रदत्त मंगल प्रवचन]

भी वह आनन्द पाया, जो कि सम्राटो को भी नहीं मिल सका । सम्राट् उन अकिंचन तपस्वियों की चरण-धूलि के लिए तरमते और उनकी सुख-समाधि में ईर्ष्या करते । आत्म-ज्ञान के प्रकाश के सामने भौतिक विज्ञान का नक्षत्र तेज-स्वी नहीं बना ।

समय चक्र घूमता रहता है । उसमें आरोह-अवरोह, उतार-चढ़ाव अवश्य होता है । चक्का घूमा, भूतविज्ञान ऊपर आ गया । आत्मा और धर्म पर दृढ़ आस्था नहीं रही । वहीन सारे बुद्धिवादी धर्म की कलह, शोषण और अत्याचार का अखाड़ा सिद्ध करने पर उतारू हो गये । उनके गिष्य-प्रशिष्यों ने भी वही राग अलापा । विश्व का दृष्टिकोण बुधला-ना होगया ।

धर्म का आचरण न करना एक बात है, आचरण करना दूमरी और उसकी विडम्बना करना तीसरी । धर्म का दुरुपयोग करने में बड़े-बड़े अन्याय हुए और हो सकते हैं, पर उनमें यह मिद्ध नहीं होता कि धर्म बुरा है । धर्म के नाम पर रबी गईं ठगाइयो का पोषक कोई नहीं हो सकता, किन्तु नाथ-नाथ धर्म जैसी दैवी म्पदा के माथ खिलवाड करना भी कोई विज्ञ मनुष्य नहीं चाहता । धार्मिक विचारों के प्रति भगवान् महावीर का क्रान्ति-स्वर हमारे सामने है—

“विस तु पीय जह कालकूट, हणाइ सत्य जह कुग्गहीय ।

एसोववम्भो विपयोववन्नो, हणाड वेयाल इवाविवन्नो ॥”

अविधि से ग्रहण किये हुए अस्त्र और कालकूट जहर जैसे पातक हैं, जैसे धर्म भी घातक बन जाता है, जब उसमें काम-वामना और लालसा का सन्निपात हो जाता है । धार्मिक इस चुनौती में अनजान नहीं थे ।

आज का विज्ञान

अपने को ‘बुद्धिजीवी’ मानने वाले थोड़ा मुड कर देखें । आज विज्ञान की कैसी गतिविधि है । उसका उपयोग किस ओर हो रहा है । उसकी तेज गति नर-सहार की भूमिका के पास पहुँच चुकी है । पदार्थ-विज्ञान की दृष्टि से विज्ञान को कोई बुरा नहीं कह सकता, किन्तु उसका दुरुपयोग निन्दनीय है ।

अनुभव से अनुभव

सुख-खान्ति के लिए तथा अन्तिम लक्ष्य मोक्ष की प्राप्ति के लिए धर्म की आवश्यकता है। जीवन की सुविधाओं की दृष्टि से मौरिक विज्ञान भी अनुभव बोधी नहीं कहा जा सकता। दुरुपयोग बोनो का भ्रष्टा नहीं। धर्म में बसे हुए विचारों को निहार कर उसको मिटा देने की बात जिन्होंने सोची वे प्रायः विज्ञान को मिटाने की बात भी सम्भवतः सोचते होंगे। क्योंकि वर्तमान में धर्म की अपेक्षा विज्ञान का उपभोग बहुत निम्न स्तर पर हो रहा है। उसकी विभीषित और प्रायः से समूचा समाज धर्म को मौन के गूह में पड़ा-सा अनुभव कर रहा है।

धार्मिकों के लिए यह सुन्दर व्यवहार है। वे गूढ भूमिका में पहुँचकर अहिंसा धर्म व विश्वसनीयता का नाश करने और हिंसक घटनाओं को चुनौती दे। धार्मिक किसी को मिटाने की नहीं सोचता। उसका लक्ष्य होगा—दुरुपयोग का अन्त करना। धर्म का विचारक हिंसक प्रवृत्तियों पर अहिंसा का प्रकाश डालता है। इसे विश्वास है कि अनुभव से समस्त विषय अनुभव की धरती में। यह से धर्म बनता है हिंसा से हिंसा बनती है लोभ से लोभ बढ़ता है। इनके प्रतिकार के लिए धीरे धीरे उपाय सोचना होगा।

सब व्यक्तियों का नैतिक बराबर समान रहे वह न तो पहले कभी हुआ और न आज भी उसकी सम्भावना है। लोभ बरिच भ्रष्ट हो गये यह विचार का विषय है। अन्याय का दृष्टिकोण गलत हो गया वह अहिंसे की धार्मिक विचार का विषय है। यदि दृष्टिकोण ठीक रहे तो बरिच-सुधार में कोई विशेष कठिनाई नहीं होती पर उसके बिना समाचार की भाषा कैसी? भूमि नाशित हुए जाया वह तप्यपूर्वक उचित है। अहिंसा धर्म और धर्मपरिग्रह से ही संकट की रक्षाएं मिल सकती हैं, इनका-सा समझ में आ जाये फिर संकट कहाँ? धर्म सही होने पर बरिच-विकास होने में समय नहीं लगता। सही मार्ग पर चलने वाला अपने आप लक्ष्य तक पहुँच जाता है।

यूरे यह कहते हुए बड़ा हर्ष होता है कि परिश्रम के वैज्ञानिकों ने भी धर्म बट सी है। धर्म की ओर उनका धर्म मुकाम हुआ है। धर्म के विचार को अस्वास्तुर करने की स्थिति तक पहुँच गये हैं। उनकी समूचा दृष्टि को बरिच

विकास के तत्त्वों की अधिक चाह है। भारत को पुनः एक बार अपने पुराने गौरव को नवीन बनाने व अपनी पैतृक सम्पत्ति के उपयोग करने का स्वर्णिम अवसर मिला है।

त्याग और समय

भारतवासियों के सामने सदा से त्याग और समय का आदर्श रहा है और आज भी है। महाव्रता की सुन्दर व्यवस्था भारतीय विचारकों की अद्वितीय सूझ है, पर वह सबके लिए सम्भव नहीं। जन-सामर्थ्य को ध्यान में रखकर हमारे आचार्यों न अगुव्रतों की भी व्यवस्था की, जो कि सवसाधारण के लिए सम्भव तथा अत्यन्त आवश्यक है।

सघ की स्थापना

इस आवश्यकता को ध्यान में रखकर एक वर्ष पूर्व 'अखण्डती-सघ' की स्थापना की गई। यह सवथा असाम्प्रदायिक है, जैसा कि विधान की पाचवी धारा में स्पष्ट है—“अहिंसा में विश्वास रखने वाले प्रत्येक धर्म, दल, जाति, वंश और देश के स्त्री-पुरुष सघ के सदस्य होने के अधिकारी होंगे।” साम्प्रदायिक एवं जातीय सघर्ष की समस्या आज की विषम समस्याओं में से एक है। विश्व का बहुत बड़ा भू-भाग इस रोग से ग्रस्त है। हमें प्राणीमात्र की समानता पर विश्वास पैदा करना है। दूसरे देश और दूसरी जाति में जन्म लेने के कारण मनुष्य मनुष्य का शत्रु नहीं बनता, यह सोचने के लिए मनुष्यों को समय निकालना होगा, दिल और दिमाग से सोचना होगा।

सघ का नेतृत्व

वर्तमान में सघ के नेतृत्व का भार मुझ पर है, किन्तु इसका यह तात्पर्य नहीं कि सघ के सदस्यों को तेरापथ सम्प्रदाय की सदस्यता स्वीकार करनी होगी। किसी भी धर्म में विश्वास रखने वाला इस सघ का सदस्य हो सकता है। अभी इसके नेतृत्व का उत्तरदायित्व मैंने इसलिए सम्भाला है कि इसकी प्रारम्भिक व्यवस्था सुदृढ़ हो जाये, समय की चेतना में नवक्रान्ति आ जाये। १८ वीं धारा के अनुसार उपयुक्त समय में इसके नेतृत्व की अन्य व्यवस्था भी की जा सकती है।

एक व्यक्ति ने मुझसे पूछा— प्रगुपती-संघ के नियम मुझे बहुत अच्छे लगे पर मुझे इतनी विश्वासा थीर है कि संघ में सम्मिलित होने पर क्या मुझे आपको अपना वर्माचार्य मानना होगा ? क्या बल्बता बरनी होगी ? मैंने उत्तर में कहा यह कोई बरनी नहीं थीर न मुझे इसकी भूक्त है । मैंने जन जीवन को ऊचा उठाने के लिए यह कार्य किया है और मैं उसीमें सन्तुष्ट हू । ११ वीं धारा में उल्लिखित प्राथमिक प्राध्यात्मिक बच्चविवि से सम्बन्ध रखता है । प्राध्यात्मिक लेन में बल के लिए कोई स्वाग नहीं । हृदय-परिवर्तन के लिए ही सब कुछ किया जाना सम्भव है ।

अनुशासन के बिना कोई भी समाज संवेगन नहीं रह सकता यह एक निश्चिन्त तथ्य है । इसलिए प्रगुपतियों को सब के नियम और अनुशासन का पूर्ण सावधानी से पालन करना होगा । सब के नियम आपने देखे हैं जीवन में उठाने हैं । बहुत सारे एक वर्मीक सावना बर भुके हैं । अच्छा हो कि उन पर कुछ प्रकाश डाला जाये जिससे जनसाधारण भी उनकी उपयोगिता से परिचित हो सकें ।

भूरता

भरता सब अन्धानों का भुक्त है । कोई किसी की हत्या करता है मा उधर्म माग लेता है किसी मनुष्य को प्रकृत मानता है किसी का तिरस्कार करता है यह सब अपने अन्तस्बल में छिपी हुई भूरता के परिणाम हैं । यह सोचा जा सकता है कि किसी को असुर्य मानकर उसका तिरस्कार न करता इससे क्या होगा ? और कुछ नहीं उस छिपी हुई भरता पर तीक्ष्ण प्रहार होना बहनाम की कमी होगी और नाठीम जीवन का एक नुरा अध्याय समाप्त होगा । मनुष्यों ने दूसरे मनुष्यों को नीच माना धामितो पर मन मानी की पशुओं के बारे में कुछ सोचने का समय ही कहा ? क्या बप-सुवर्ष यही से तो नहीं बरमा है ? क्रिया की प्रतिबिम्बा होती है यह धास्वतिक नियम मनुष्य कों भुक्त जाता है । धारम-हत्या निरुना बडा पाप है फिर भी धाध्यात्मिक नेतना के अभाव में यह एक बाल रोटी-सी बन रही है । परीक्षा में अनुत्तीर्ण हुमा पारिवारिक व्यक्ति को से बोड़ी अमनन हुई, व्यापार में बाटा बना कोई छोटी-सी समस्या धामने धाई सुरत धारम-हत्या के बच

पर चल पड़ते हैं। आगे क्या होगा, इतना नहीं सोचते। भ्रूण-रत्या के काम भी कम नहीं होते। अगुव्रती होने का अर्थ है उन चुराया में प्रचना। अहिंसा-अगुव्रत में मद्य न पीना, मांस न खाना, आग न लगाना, शिखार न करना, गाली न देना आदि आदि अनेक नियम हैं, जो कि प्रायः हीन ही जीवन के अनिवाय अंग हैं।

मूल आधार

विश्व की व्यवस्था का मूल आधार मृत्यु है। उसकी आज तथा स्थिति है, यह सब जानते हैं। मैं विशेष क्या कहूँ। बान-पान में मूठ है। गान-पीन की बात से लेकर जीवन में सम्बन्ध बनने वाली प्रत्येक बान पर अमय छाया हुआ है। न्यायाधीश पत्र बकीर गवाह और गहम्य वहीं चल जाया, असत्य की मात्रा में मृत्यु की मात्रा बिन न हो जाना है। जिस पर यह बान वीतती है, वह दुःख का अनुभव करता है, पर दूसरे के अवसर पर वह उन बातों को भूल जाता है। जिसकी चीज चुराई जाती है, उसे कष्ट होता है, पर दूसरे के अधिकार टहलने के समय वह अपनी स्थिति की याद नहीं करता। कितना अच्छा हो, प्रत्येक चुराई के अवसर पर मनुष्य अपनी दशा को उदाहरण बनाले।

शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक प्रत्येक स्थिति को मुदृढ और सुव्यवस्थित रखने के लिए ब्रह्मचय आवश्यक है। पूरा ब्रह्मचय कठोर माधना है, फिर भी अब्रह्मचय पर नियंत्रण रखना नितान्त आवश्यक है। अप्राकृतिक मैथुन, वेश्यावृत्ति आदि दुष्प्रवृत्तियों के कुफल से कौन अपरिचित है ?

मानव में विवेचना होती है, मली-चुरी का बाध होता है, पर सग्रह राक्षसी के सामने आते ही वह सब भुला देता है अन्यथा प्रवृत्त हो जाता है। अधिक परिग्रह में सामाजिक जीवन बोझिल बना हुआ है। भान्ति भाति की कुहडियों का पोषण करने के लिए धनाजन करने की प्रबल भावना बनती है और उसके लिए काय और अकार्य सभी उपायों का अवलम्बन किया जाता है। 'कमी करो' यह धर्म का मूल मन्त्र है। भोग-सामग्री का बढाना अर्थ नहीं। इच्छा-नियन्त्रण की वेदी पर सब सघर्ष अपने आप स्वाह हो जाते हैं।

में चाहता हूँ कि इस क्षण में प्रत्येक वर्ग के व्यक्ति सम्मिलित हों। सबके लिए इसका द्वार खुला रहे। वह भौतिक विज्ञान के दुरुपयोग व साम्प्रदायिकता दोनों को नुस्तरीते है। इसके द्वारा जन-जन का जीवन-मरण प्रसस्त होने यह मेरी कामना है।

[१ अप्रैल १९५५ को दिल्ली में अणुवर्षी-संम के प्रथम वायिन अधिवेशन के प्रथम संदेश]

: १७ :

सच्ची सेवा

यह प्रभात मगल प्रभात है और यह वेला मगल वेला । आज मुझे अत्यन्त हर्ष है कि एक चिर प्रतीक्षित और अभिव्यक्त भावना मफल व माकार हो रही है । जो योजना कुछ मम पूव केवल विचारों में थी, वह आज क्रियान्वित हो रही है । सरदारअहर की इस मानवमेदिनी में उम मय का उद्घाटन हो रहा है, जो अपने रूप में निराला है ।

कल्याण का प्रशस्त मार्ग

भगवान् महावीर के उस वाक्य की आज मुझे स्मृति हो रही है, जिसमें प्रेरणा मिली, आत्म-बल मिला और नई दिशा मिली—

‘वर में अपना दन्तो, सजमण तवेणय ।

माह परेहि दम्मन्तो, वन्धरोहि वहेहिय ।’

‘मैं स्वयं समय और तपश्चर्या के द्वारा अपने पर नियन्त्रण करू, यही मेरे लिए श्रेयस्कर है । दूसरे लोग मेरे पर नियन्त्रण करें, मुझे बाधें और मारें, यह श्रेयस्कर नहीं है ।’ यह कितना सुन्दर और हृदयग्राही उपदेश है । अपेक्षा है, जन-जन के द्वारा यह उपदेश क्रियान्वित किया जाये । आज के युग में इसकी असीम उपयोगिता है और यही कल्याण का प्रशस्त मार्ग है ।

नामकरण व उद्देश्य

इस सस्था का नाम ‘अणुव्रती-सघ’ है । नाम छोटा है, पर नाम से क्या ? हमें नाम से मतलब नहीं, काम से मतलब है ।

इस सघ की स्थापना का उद्देश्य है—जाति, वंश, देश और धर्म का भेद-भाव न रखते हुए मानव मात्र को समय की ओर अग्रसर करना । आध्यात्मिकता के द्वारा गृहस्थ जीवन को ऊँचा उठाना व विश्व-मैत्री तथा विश्व-शान्ति का

मार्ग प्रसस्त करना। संक्षेप में इस प्रकार कहा जा सकता है—सुसुप्त मानवता को जागृत करना। यद्यपि धात्र के युग में सभ धीर संस्थाओं की कमी नहीं है किन्तु धार्म्यात्मिक प्रेरणा करने वाली संस्थाएँ नहीं के बराबर हैं। ऐसी परिस्थिति में मैं मार्ग बहिनो से कहना चाहूँगा—सबसे होकर जीवन-निर्माण करो। सत्य धीर धर्मज्ञा के बल पर जीवन-स्तर को ऊँचा उठाओ। धर्म्यात्म्य भौतिक साधनों से जीवन-स्तर ऊँचा उठाने में समुदाय सहायक प्रसस्त है पर धात्र रहना होगा। धात्र-निर्माण के बिना न तो धार्मिक मित्र सकती है धीर न सही धर्म में जीवन का स्तर ऊँचा उठ सकता है।

सभ का महत्त्व

धार्म्यात्मिक दृष्टिकोण से सभ का महत्त्व है यह तो निर्विवाद है। धर्म्यात्म्य दृष्टि-बिन्दुधा से भी यह कम उपयोगी नहीं होता। क्योंकि धर्म के सभ धर्म्युद्यम का गहरा सम्बन्ध है। सत्य धर्मज्ञा अपरिग्रह धार्मिक धर्माचरण से धार्मिक धर्म व धात्र सबका हित होता है।

इस सभ की स्थापना में सुसुप्त जनता से प्रबल प्रेरणा मिली है। धात्र से नहीं बरों से जन-धर्म ऐसी योजना के लिए उत्सुक था। हमारा धर्मियों की धार्मिकी जीवन-कल्याणिया समय-समय पर मेरे सामने प्राणी रही। फिर भी मैं एक विशेष कार्य में समझ होने से इस धात्र ध्याम न हो सका। मेरा वह कार्य था—साधु-संस्था के विद्यार्थी का विस्तार। साधु-समाज में धर्म-विकास पूर्ण था। उसके लिए कोई प्रेरणा करने की आवश्यकता नहीं थी। धर्मज्ञा के लिए भी धर्मधर्म भी कामुदगी का बचाना प्रेरणाहृत काम कर रहा था। फिर भी उस कार्य में बहुत कुछ विकास की अपेक्षा थी। मैंने भी धर्मनी सारी धर्मिता लक्ष्यी कार्य में लगा दी। मुझे प्रसन्नता है कि साधु-समाज इन बरों में इस दिशा में विशेष प्रयत्नशील हुआ धीर धीर ही धर्मने निर्धारित लक्ष्य तक पहुँचा। जब मैंने कुछ ही धोर देखा तो जनता की स्वर-कृष्टियाँ धात्रों से टकरा रही थी। मैंने धर्म जनकी धोर ध्याम देना उपयुक्त समझा धीर धिया। यह धर्म्युद्यमी-सभ की योजना उसीका परिणाम है। मुझे प्राणा है कि यह जनता की उस भाग को पूरी करेगा। मूक रूप से धात्र का युग भी धार्म्यात्मिकता की मान कर रहा है वह भी इससे पूरी होनी। निःसन्देह यह सबके लिए उपयोजनी होगा।

असाम्प्रदायिक

सम्प्रदाय के नाम से आज लोग घबड़ा जाते हैं, पर उन मध में साम्प्रदायिकता को कोई स्थान नहीं है। इसमें सावजनिक नियमा का विधान किया गया है। नैतिक उत्थान सबको प्रिय है। अहिंसा और नम्र पर किसी का अधिकार नहीं है। वे सबके लिए है। उन्हीं के आधार पर हमका समाजन या सकलन किया गया है। जनता इनका स्वागत करेगी, ऐसा मुझे विश्वास है।

युवको से

युवक अब अपनी शक्ति का पञ्चय दें। युवक कान्ति के सचानक होते हैं। मुझे इन काय में अग्रिम प्रेरणा युवका की ओर म मिनो ह। बृद्धा में भला कहा इतना जाश कि वे कठिनाई की शान करें ? मेरा शब्दा में बृद्ध और युवक अवस्था में सम्बन्धित नहीं, परन्तु क्रिया में सम्बन्धित है। यह युवका के लिए अग्नि-परीक्षा का अवसर है। युवक शक्ति की कसौटी है। युवक हमसे खरे उतरे, नहीं तो उनकी उत्थान की बातें, उन्नति की कल्पनाएँ, सामूहिक कल्याण और जागृति की कामनाएँ थोथी और तन्महीन होगी। मैं ऐसी बात देखना नहीं चाहता। मैं उन्हें कह सकता हूँ कि वे स्वयं त्याग के पथ पर आयेँ और हमारे को प्रेरणा दें। उनके लिए यह स्वर्णिम अवसर है। आवाज में सबसे पहले और काम में सबसे पीछे, यह समय अब नहीं रहा। अब उनके सामने दो मार्ग हैं, या तो सही अर्थ में सुधार-भावना को सफल करने के लिए आत्म-निर्माण में जुट जायें या सुधार की थोथी आवाजों को बन्द कर दें। युवक सेवा चाहते हैं, उत्थान चाहते हैं—उन्हें अब समझ लेना चाहिए कि त्याग ही सच्ची सेवा, सच्चा उत्थान और सच्ची जागृति है।

दुनिया सुख की टोह में है। भोग में सुख नहीं, विपाद है। सुख की भ्रान्ति है। सच्चा सुख त्याग में है। जहाँ भोग छूटने पर भोगी दुःख पाता है, वहाँ त्यागी आनन्द का अनुभव करता है। त्यागी स्वयं भोगों को ठुकराता है। भोगी उनके लिए मारा-मारा फिरता है। जिन्हें त्याग का अभ्यास नहीं, उन्हें नश्वर भोग-लीलाओं के आवर्तन-प्रत्यावर्तन में बड़ी यातनाएँ भैलनी पड़ती हैं। आज बड़े-बड़े विलासी व सत्ताधिकारियों की दशा सबके सामने है। आचार्य श्री कालुगणी कहा करते थे कि 'देख जगत्-रचना, भय रचना

अपना' इसलिए बेतु और त्याग के पथ पर भायो। त्याग महामन्त्र है। इसका अर्थ करने वाला किसी भी इसा में कष्टों से आन्दोलित नहीं होता। मैं चाहता हूँ कि युवक त्याग के प्रति मुझे नैतिक पथ पर भागे बढ़ें भारत-जन का विकास करें और आध्यात्मिक ज्ञान्ति को स्वामी बनायें।

लोग राबण और अज्ञान्ति सीता

त्याग का मार्ग कठिनाई का मार्ग है। इससे बचराने की आवश्यकता नहीं। कठिनाई को पार करो। साहस से काम लो। नीतिकारो ने कहा है कि भय से भय बढ़ता है। मय की छाती को चीर कर बसे बाघो फिर कोई मय नहीं। ठीक इसी प्रकार कठिनाइयाँ से बचराने तो वे बढ़ेंगी। उनका सामना करो वे मिट जायेंगी। यदि राम समुद्र से बहका जाते अपना बोडी सी सेना देखकर निरास हो जाते तो उन्हें सीता कहा से मिलती ? वे बचराये नहीं। साहस से काम लिया। अपने तुच्छ और नमन्य साधनों के उपरान्त भी राबण को समझ बुगाबाघों के साथ जमी का पूत बना दिया। एक नबि ने कहा है—

विद्वानभ्या लंका चरकरभीयो बलसिद्धिः ।

विपथ पोलस्तयो रणभुवि सहापाथ्य कपथ ॥

तथाप्येको रामः सकलमबबीह्रासकुर्म ।

विद्यासिद्धिः तस्ये बसति भूता नोपकरणे ॥

महान् व्यक्तियों की विद्या-सिद्धि उनके लक्ष्य साहस व व्यक्तित्व में रहती है। वह बाहरी उपकरणों में नहीं मिलती। माइयो ! घाब आपकी प्यारी सखी ज्ञान्ति मुद्र टापू सका मैं अपनाहुत हो चुकी है। बीच में नीतिकथा का विचारनाम समुद्र पडा है। बुनियात रु सबसे बड बनु लोग राबण को मार कर आपको अपनी ज्ञान्ति सीता को लाना है। बरो मत बचराओ नहीं हिम्मत रखो साहस बननेने। युवक अहाँ सोसियों की बीकार ये सीता लानकर बड़े हो जाते है वहा हममें बचराहुट की क्या बात है ?

साधना-काल

अशुद्धी-मय में कुछ कूट ही पई है। एक वर्ष का साधना-काल रखा मया है। इससे नाम होना। लोग अपने आपको लोल सकेंगे और हमें भी परीक्षण का मौका मिळ जायिया। इस योजना में मैं चाहता था जतने कड़े नियम नहीं

अणुव्रतों की दार्शनिक पृष्ठभूमि

व्यक्ति बनाम समाज

व्यक्ति का अस्तित्व अणुव्रतों में है। समाज का अस्तित्व व्यक्ति में है। व्यक्ति वस्तुवादी है और समाज सुविधावादी। व्यक्ति की आवश्यकता अणुव्रतों में पूरी नहीं हुई तब सापेक्ष स्थिति का उद्गम हुआ। सापेक्षता से समाज को अणुव्रतों में प्रति उपकार का सिद्धान्त जितना वास्तविक है उतना ही व्यावहारिक है। जैन-दर्शन ने विश्व स्थिति की मौलिक समस्या—जड़-चेतन के सम्बन्ध की समस्या को सुलझाने के लिए इसका उपयोग किया। इस रचना में वैदिक दर्शन ने व्यवहार के क्षेत्र में इसका प्रयोग किया। जैन-दर्शन के अनुसार जैसे विश्व सगुण के हेतु जीव और पुद्गल का परस्पर अणुव्रत है वैसे ही वैदिक दर्शन के अनुसार समाज सगुण का हेतु परस्परिक अणुव्रत है। समाज की अणुव्रती व्यवस्था और सापेक्ष स्थिति से बचकर व्यक्ति व्यक्ति नहीं रहता वह धारण प्रदान का केन्द्रबिन्दु बन जाता है।

व्यक्ति व्यक्ति रहता है तब तक उसके सामने महात्वाकांक्षा महात्वा काणा की पूर्ति के लिए परिश्रम या अश्रम अणुव्रतों के लिए शोषण या अणुव्रतों शोषण के लिए बौद्धिक या कायिक शक्ति का विकास बौद्धिक और वैदिक शक्ति-अणुव्रतों के लिए विद्या की दुरभिसंधि स्पर्धा आदि-आदि समस्याएँ नहीं होती। समाज में प्रवेश पाकर व्यक्ति ज्यों-ज्यों अपनी दुर्बलता का प्रति कार पाता है त्यों-त्यों महात्वाकांक्षा और स्पर्धा उसे शक्ति-अणुव्रतों के लिए

१ अणुव्रतविभाग ५२१

२ अणुव्रत अणुव्रत

प्रासंगिक फल के रूप में समाज का नियमन भी होता है, किन्तु वह बर्न का अन्तर्गत फल नहीं। ऐहिक और पारलौकिक धार्म-सिद्धि के लिए बर्न करना विहित नहीं है। बर्न परलोक के लिए है यह धारणा भी सर्वोप है। धार्म-हित की दृष्टि से यह इहलोक और परलोक दोनों में श्रेयस्कर^१ है।

भारतीय चिन्तन की मुख्य धारा कर्तुर्बन्धु पुरुषार्थ—मोक्ष की ओर बही। सम्प्रदास्य प्रमास्यध्यास्य का धरम उद्देश्य मोक्ष रहा इसमें कोई धारण्य नहीं किन्तु कामध्यास्य में भी जीवन का धरम उद्देश्य मोक्ष बतसाया गया है^२। उपनिषद् में प्रेयस् को ब्रह्मन् और अथम् को मुक्ति माना है। प्रेयस् जीवन की अनिवायता है फिर भी उसमें धनासक्ति होनी चाहिए कारण यह कि प्रेयस् की ओर जो यति है उसमें प्रेयस बाधक न बने। जैन-दृष्टि के अनुसार धार्म-मुक्ति की प्रक्रिया के दो तत्व हैं—सबर और निजरा। सबर निवृत्ति है और निजरा निवृत्ति सबन्धित प्रवृत्ति सबर निगम है और निजरा सोचन। यह व्यक्ति की सङ्ग मर्यादा है। इससे यह फलित होता है कि बर्न व्यक्ति के धार्म-नियमन का साधन है इसे समाज के धारणी सम्बन्धा के नियमन का साधन बताना जाता है यह अन्तर्ध्यासी मानस की कल्पना है।

महाकृत और धनुकृत

माध्यायिक जीवन में शरीर जीवन का सर्वोच्च पीरक पूर्व स्थान है। महां धन ऐस्वर्य मोक्ष विनास और धान से कोई बड़ा नहीं बना। नमि राजवि राज्य-भेदक और भोग-विनास का दुकरा कर निर्दग्ध बने। इन्द्र ने जनते कहा—धर्य धान ह जोर करे और फिर बीखा लें। राजवि बोले—अर व्यक्ति प्रतिमास बस नाक पावों का धान कट्टा है उसके लिए भी समय

१ जो यह लोगदुमाय तबमहिद्विज्या तो परलोकदुमाय तबमहिद्विज्या।
—दसरी ११४

२ ऐहि धाराहिका बुने जोय। —तत्त ५१२
३ वैशेषिक दर्शन १ ४ त्पामदर्शन ११२
४ हैमचन्द्रानुशासन १।११२ मधुन्वास
५. स्वकिरे बर्न मोक्षक—कामध्यास्य धार्याय २

श्रेष्ठ है, यद्यपि सयमी जाने पर वह एक गाय का भो दान नहीं करता' ।

भारतीय परम्परा में महान वह है जो त्यागी है । यही वास्तविक त्याग के आदर्शों का माहिल्य है । जीवन के चरम भाग में निरंतर या न जानी प्रन जाना तो महज वृत्ति है ही किन्तु जीवने आर्त्ति भाग में भी प्रव्रज्या आदेय मानी जाती रही है । त्यागपूण जीवन महाव्रत की भूमिका या नियंत्रण वृत्ति है, यह निरूपवाद मयम माग है । उसके लिए अत्यन्त विरक्ति की अपत्या है । जो व्यक्ति अत्यन्त विरक्ति और अत्यन्त अविरक्ति के बीच की स्थिति में होता है, वह अणुव्रती बनता है । आनन्द गायोपनिषद्मयान् महावीर में प्रार्थना करता है—'भगवन् ! आपके पाप बहुत मात्र अति नियम प्रनते है, किन्तु मुझ में ऐसी शक्ति नहीं कि मैं निर्णय प्रनू । अतः मैं आपके पाप पाच अणुव्रत और मात शिखाव्रत-द्वादश व्रतात्मक गृहीधम स्वीकार करूँगा' । यही शक्ति का अर्थ है—विरक्ति । जिसे मगार के प्रति, पदार्थों के प्रति, भोग-उपभोग के प्रति विरक्ति का प्राबल्य होता है, वह नियंत्रण बन सकता है । अहिंसा और अपरिग्रह का महान् व्रत उसका जीवन धम बन जाता है । यह वस्तु मवके लिए नम्भव नहीं । व्रत का अणुव्रत मध्यम माग है । अत्रती जीवन, शोपण और हिंसा का प्रतीक होता है और महाव्रती जीवन दुःशक्य । इस दशा में अणुव्रती जीवन का विकल्प ही शप रहता है ।

अणुव्रत का विधान व्रतों का सीमाकरण या सयम और अमयम, मत्य और अमत्य, अहिंसा और हिंसा, अपारग्रह और परिग्रह का मिश्रण नहीं, किन्तु जीवन की न्यूनतम मर्यादा का स्वीकरण है ।

अणुव्रत विभाग

अणुव्रत पाच है—अहिंसा, सत्य, अचीय, ब्रह्मचर्य या स्वदार-सन्तोष और

१ जो सहस्स महस्साण, मासे मामे गव दए ।

तस्सावि मजमो सेओ, अदिन्तस्स वि किचण । उत० ६।८०

२ यदहरेव विरजेत् तदहरेव प्रव्रजेत् ।

३ नो खलु अह तहा सचाणमि मुण्डे जाव पव्वइत्तए । अहण्ण देवाण-
प्पियाण अन्तिए पचाणुव्वइय सत्तसिक्खावइय दुवालसविह गिहिधम्म
पडिवाज्जस्सामि—उपासक दशांग अ० १

अपरिग्रह या इच्छा परिमाण ।

अहिंसा - अहिंसा रागद्वेषात्मक प्रवृत्तियों का विरोध या आत्मा की राग द्वेषरहित प्रवृत्ति । पहला विधेयात्मक पक्ष है और दूसरा विधेयात्मक । निषेधात्मक भावी बुद्धि के लिए है और भूत बुद्धि के लिए विधेयात्मक । वर्तमान बुद्धि दोनों के है ।

अनिवार्य हिंसा या अर्ध हिंसा जीवन की अशक्यता का पक्ष है । अर्ध हिंसा प्रभावबद्ध होती है । मनुष्य अतनी कामिक हिंसा नहीं करता उतनी मात्र सिद्ध करता है । स्व-अप बड़ा-छोटा अल्पसंख्यक स्तुत्य दानु मिन धारि अनेक कल्पना के बन्धना के फल कर मनुष्य इतना असम्यक्ता है कि यह मानसिक हिंसा से सहन सुक्ति नहीं पाते पाता । अहिंसा अशुद्धत का तात्पर्य है अर्ध हिंसा से वा अशक्यता शून्य केवल प्रभाव या अज्ञान अहित हिंसा से बचना ।

सत्य - सत्य अहिंसा का अन्तःस्थ या वाच प्रकाशात्मक पहलु है । हास्य अनुहस्यवस अयचार्य बोधना भी असत्य है । यह वेसका सूक्ष्म रूप है । मनुष्य इससे न बच सके जो कम से कम स्तुम असत्य से तो अवश्य बचना चाहिए । जिस वाणी या भावामिच्छाणा के पीछे बुरे विचारों का काम विद्यमान रहता है, वह स्तुत असत्य है । सत्य अशुद्धत में ऐसे असत्य का त्याग आवश्यक होता है ।

अचौर्य - अचौर्य अहिंसात्मक अविचारों की व्याख्या है । पर-अनु-इच्छा चौर्य है हिंसा का अविचार है । मनुष्य समाज के भागसी सम्बन्ध अविचारों के स्वेन वृत्ति के रूपधीनी हैं । एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति का अवेगल करता है, अविचार से नेता है, बाध बनाता है, अवेध मनबाता है, स्वतन्त्र जीवन है यह सब स्वेन वृत्ति है । सूक्ष्म दृष्टि से दूसरे का एक तिक्का भी उसकी अनुमति के बिना नेता स्वेन है । अचौर्य अशुद्धत की मर्यादा है - जीवन के वाचत्मक सूत्रों का अपहृत्य न करना ।

अह्यचौर्य - अह्यचौर्य अहिंसा का अन्तःस्थ-आत्मक पक्ष है । पूर्ण अह्यचारी न बत सकने की स्थिति में अविचारित पक्षों के अतिरिक्त अह्यचौर्य का परिष्कार करता और अपनी पक्षों के साथ मान की सीमा करना अशुद्ध अशुद्धत है ।

अपरिग्रह - अपरिग्रह अहिंसा का पर-अचौर्य निरपेक्ष रूप है । अह्यचौर्य का जीवन अपरिग्रही बन नहीं सकता इसलिए अपरिग्रह अशुद्धत का अर्थ है -

इच्छा का परिमाण । परिग्रह का नियंत्रण सामाजिक नियम से हो सकता है किन्तु उससे इच्छा का नियन्त्रण नहीं होता । व्रत यह है, इच्छा के नियंत्रण के द्वारा परिग्रह का नियंत्रण हो ।

अणुव्रत के अनुकूल वातावरण

व्रतो की उपादेयता में कोई दो मत नहीं । मत द्वैध है, व्रतो की उपयोगिता में । आत्मविवर्तित से स्वनियमन करने वाले विरले होते हैं । अधिकांश व्यक्ति तब तक हिंसा और परिग्रह को नहीं छोड़ते, जब तक वे वैसा करने के लिए बाध्य नहीं किये जाते । व्रत हृदय-परिवर्तन का फल है । जनसाधारण का हृदय उपदेशात्मक पद्धति से परिवर्तित नहीं होता, इसलिए समाज की दुर्व्यवस्था को बदलने के लिए व्रतो की कोई उपयोगिता नहीं । लगभग स्थिति ऐसी है । क्यों है, यह चिन्तनीय है । इस चिन्तन के परिणामस्वरूप दो तीन बातें हमारे सामने आती हैं । पहली यह कि व्रतो की रचना समाज की आर्थिक दुर्व्यवस्था मिटाने के लिए नहीं । उनकी रचना हुई है, उसकी आत्मिक दुर्व्यवस्था मिटाने के लिए । आत्मिक दुर्व्यवस्था मिटते ही आर्थिक दुर्व्यवस्था मिटती है, किन्तु व्रताचरण का वह गौण फल है । आत्मिक दुर्व्यवस्था परिसमाप्ति का एक मात्र साधन हृदय-परिवर्तन है । व्यक्ति का हृदय बदलता है, उससे आत्मिक दुर्व्यवस्था का अन्त होता है । उससे समाज की दुर्व्यवस्था मिटती है ।

कानून के पीछे ऐसी स्थिति है कि मनुष्य उसका उल्लंघन नहीं कर सकता और यदि करता है तो उसे उसका फल भुगतना पड़ता है । व्रतो के पीछे ऐसा वातावरण नहीं है । उनका आचरण इच्छा प्रेरित है ।

दूसरी बात मनुष्य की आन्तरिक वृत्तियाँ राग-द्वेषात्मक होती हैं । इनके फलस्वरूप व्यक्ति में अप्रिय वस्तुस्थिति के प्रति असहिष्णु वृत्ति, अपने को सर्वोच्च मानने की वृत्ति, दूसरों को ठगने की वृत्ति और सग्रह की वृत्ति, ये चार मुख्य वृत्तियाँ होती हैं । समाज का वातावरण और आसपास की स्थितियाँ इनके अनुकूल होती हैं तब इन्हें उत्तेजना मिलती है और इनका कार्य तीव्र हो चलता है । बाहरी साधन की प्रतिकूल दशा में ये वृत्तियाँ दबी रहती

१ कोह च माण च तहेव माय, लोभ चउत्थ अजरथ दोसा ।

है। समाज की प्रेरणा इतनी ही है कि ये बड़ी रहे। सम्भारन की यह श्रुतिका है। उसकी प्रेरणा है इनका मूलोच्छेद हो। बिनकी आत्मा उबबुल हो जाती है। वे पारिपार्श्विक स्थितियों पर विषम पाकर उनका मूलोच्छेद कर डालते हैं। किन्तु सर्वसाधारण की स्थिति ऐसी नहीं होती। समाज की भोगवादी मनोवृत्ति उन्हें उफनाती है यही कारण है कि सर्वसाधारण को बल पालन की सहज प्रेरणा नहीं मिलती। तीसरी बात यह लेने वाले प्रताप कलेवर की सुरक्षा करते हैं किन्तु उनकी आत्मा को नहीं छूते। ब्रह्मों को अपने जीवन में लाते हैं किन्तु जीवन को उनके आदर्शों पर नहीं डालते। इस पर पुनर्विचार करना होगा कि अणुवृत्ती जीवन का आदर्श क्या और कैसा होना चाहिए ?

अणुवृत्ती जीवन का आदर्श

अणुवृत्ती जीवन का आदर्श है—परिग्रह और धारम्म का अस्वीकरण। मोक्षवाद से महारम्म और महापरिग्रह का अन्त होता है। अणुवृत्ती को महेश्वर और महारम्मी नहीं होना चाहिए। महारम्म का हेतु महान् इच्छा है। इच्छा स्वल्प होती है। तब हिमा अपने आप स्वल्प हो जाती है। धारम्म आदर्शवृत्ता के सहारे चलता है। तब वह असीम नहीं बनता। उसकी मति इच्छा के असीम हो जाती है। तब वह सीमाशील बनता है। पूंजी और उद्योग का केन्द्रीकरण आदर्शवृत्ता की पूर्ति के लिए नहीं किन्तु इच्छा की पूर्ति के लिए होता है। अणुवृत्ती आदर्श के अनुसार इनका अपने आप विकेंद्रीकरण हो जाता है। अणुवृत्ती दूसरे के भ्रम और भ्रमफल को न छोड़े तभी वह अहिंसा और असौंदर्य के आदर्श पर चल सकता है। दूसरे के भ्रम को जीतने की वृत्ति दृष्टी है। तब अपने आप उसका जीवन आत्मनिर्भर स्वावलम्बी और अमपुर्ण बन जाता है। जो व्यक्ति अपने भ्रम पर निर्भर रहता है वह कभी महारम्मी और महापरिग्रही नहीं बनता। महारम्म व महापरिग्रह की परिचाया समझने में मूल हो रही है। उस पर फिर विचार करने की आवश्यकता है। सामान्यतया बीड़ी बहुत प्रयत्न अहिंसा के कार्य को जोष महारम्म मान लेते हैं। परेश हिमा की ओर ध्यान नहीं देते। बेटी में जीव भरते हैं इसलिए वह महारम्म का अन्त लपटा है किन्तु जोड़े लोक-भाष में प्रत्यक्ष हिंसा नहीं बीबती इसलिए वह

महारम्भ नहीं लगता। महारम्भ और महापरिग्रह नरक के कारण है^१। कारण साफ है, उनसे आर्त्त व रौद्र ध्यान बढ़ता है। उससे आत्म-गुण का घात होता है। आत्मा का अन्न पतन होता है। आचार्य जिनसेन ने व्याज लेकर आजीविका करने को आर्त्तध्यान का चिन्ह^२ माना है। विषय-सरक्षण रौद्र ध्यान है। इसका अर्थ है, विषय और धन की प्राप्ति और सरक्षण के लिए चिन्ता^३ करना। धार्मिक समाज में भी मानसिक हिंसा का प्राश्रय इसलिए हो गया कि उसमें प्रत्यक्ष हिंसा नहीं दीखती। यदि प्रत्यक्ष हिंसा की भान्ति परोक्ष हिंसा से भी घृणा होती तो जीवन इतना असत्यनिष्ठ और अप्रामाणिक नहीं बनता।

वृत्तियों की अप्रामाणिकता का हेतु महापरिग्रह है। महापरिग्रह के लिए महासावद्य उपाय प्रयोजनीय होते हैं। अणुव्रती अल्पपरिग्रही होता है, इसलिए उसके जीवन-उपाय अल्प सावद्य होते हैं।^४ इसीलिए उसे अल्प सावद्य कर्मर्य कहा जाता है। अल्पसावद्य कर्मर्य के सामने अप्रामाणिक बनने की स्थिति ही नहीं आती। अणुव्रती की जीवन-वृत्ति सप्रहोन्मुख नहीं होती। वह कला या कर्म का आलम्बन इसलिए लेता है कि जीवन-वृत्ति सुखपूर्वक चले। श्रम के द्वारा जीविका का सुखपूर्वक निर्वाह नहीं होता है, तब चोरी आदि कुप्रवृत्तियाँ^५ बढ़ती हैं। जटिल परिस्थितियाँ मनुष्य को बुरा बनने की प्रेरणा देती हैं, इसलिए समाज उन्हें सरल बनाने की सोचता है। अन्य स्थितियों की अपेक्षा इच्छा की अनियंत्रित दशा अधिक जटिल स्थिति है। अणुव्रती को उस पर अधिक ध्यान देने की अपेक्षा होती है।

१ महारभयाए महापरिग्रहियाए, पच्चिदिय वहेण कुण्हामरेण।

—भगवती श० ८-३-६

२ मूर्च्छा कौशील्य कंनाश्य कौसीद्यान्यतिगृध्नुता।

भयोद्वेगानुशोकाच्च लिङ्गान्यात्तं स्मृतानि वै ॥ ४०॥

—महापुराण पर्व—२१

३ भवेत् सरक्षणानन्द स्मृतिर्यार्जनादिषु।—महापुराण २१।५१

४ अल्पसावद्यकर्मर्या आवका श्राविकाश्च, विरत्यविरतिपरिणतत्वात्।

—तत्त्वार्थराज वार्तिक ३।३६

५ कलाद्युपायेन प्राप्तसुखवृत्तिकस्य चौर्यादिव्यसनासक्तिरपि न स्यात्।

—जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति वृ० २। वक्षस्कार ६

सभेप में समुपेक्षी जीवन का आदर्श है—इच्छा-परिमाण आरम्भ परिमाण। इस आदर्श को निभाने के लिए अनुपेक्षी को बढ़प्पन व झुटे आदर्शों पर प्रहार करना होगा। धर्म का नीच मानने की भावना नृति के आचार पर ऊच-नीच की कल्पना धर्म के आचार पर बड़े-छोटे की कल्पना को ठोड़ना होगा। जीवन के मापदण्डों को बदलना होगा। जीवन के मूल्य न बदरें राजसी धारा में प्रस्तर न घासे जब तक समुपेक्षित जीवन प्रेरक नहीं बनते। समुपेक्षी को साक्षी के लिए आदर्शों का धीर तन्द्रा व लिए मिथ्याभिमान का बलिदान करना होगा।

व्यक्तिवादी मनोवृत्ति

भारतीय जीवन में व्यक्तिवादी मनोवृत्ति का प्राबल्य है। अध्यात्मवादी धारा में व्यक्ति का विशेषत्व बढ़ता है। समय के क्षेत्र में यह प्राबल्यक है। 'समाज समयी नहीं बनता तब मैं क्यों बनू' यह मन स्थिति समय के स्वीकरण में बाधक बनती है। समाज समयी न बने फिर भी व्यक्ति को समयी बनना चाहिए। समय समाज का कानून नहीं व्यक्ति की स्व-मर्चाया है।

सामाजिक रीतिक्रम समाज नहीं करता बल्कि अकेला व्यक्ति अपना विशेषत्व दिखाना है यह स्थिति समाज के लिए बाधक बनती है। व्यक्ति की उच्च क्षमता समाज की मनोवृत्ति को समाजने का निमित्त बनती है।

अध्यात्म की धारा यह नहीं है कि व्यक्ति अस्वयम में व्यक्तिवादी रहे। उसकी अपेक्षा है व्यक्ति अस्वयम-भावना के लिए व्यक्तिवादी रहे। यह व्यक्ति धर्म जो स्वयं से निरखता है समाज या राष्ट्र के लिए बाधक नहीं बनता।

धर्म समाज को व्यक्तिवादी दृष्टिकोण देता है यह कहने वाले उसकी सीमा को दृष्टि से शोभन किमें देते हैं। सही धर्म में व्यक्तिवादी दृष्टिकोण बनने का प्रभाव कारण सामन्तवादी है। भोपवादी मनोवृत्ति समूहवादी मनोवृत्ति व्यक्तिवादी मनोवृत्ति और परिवारवादी मनोवृत्ति में सामन्तवादी के निरिच्छत परिणाम है। भारत धर्म का मुख्य उद्गम जोठ रहा है इस दृष्टि से मने ही यह धर्मप्रभाव कहलाये पर धर्मोत्तरण की दृष्टि से धर्मप्रबल कहलाने की क्षमता कम से कम प्राय तो उसमें मही है। सीमाप्य से पठों की दृष्टि धर्म की सुरक्षित है। यदि उनका जीवन में प्रबोध बढ़ा व्यक्तिवादी मनोवृत्ति भोग

असयम और अहम्-पोषण से हटकर सयम की ओर मुड़ी तो अवश्य ही अनैतिकता की बाढ़ रुकेगी ।

संगठित शक्ति

अणुव्रती स्वयसिद्ध शक्ति है । भोगवाद की एकछत्र शक्ति के प्रतिरोध के लिए वही सफल साधन है । अपेक्षा यह है, वह शक्ति संगठित बने । असयुक्त दशा में दो नौ के अको को जो 'अठारह' का बल मिलता है, वह सयुक्त दशा में 'नितान्वे' का हो जाता है । सयुक्त स्थिति का लाभ उठाने के लिए ही अणुव्रत आन्दोलन का आरम्भ कर व्रत-शक्ति को संगठित करने का प्रयत्न किया गया है ।

आज की भाषा में प्रगति व विकास का मापदण्ड पदार्थ-विस्तार है । जडवादी युग के पदार्थ-परक विकास के सामने चैतन्य विकास का जो प्रतिरोध अपेक्षित था । उम दिशा में यह सफल कदम प्रमाणित हुआ । भविष्य में इससे बहुत सम्भावनाएँ हैं ।

ह्रास या विकास

मनुष्य की बाहरी स्थितियाँ विकसित हुई हैं, यह जितना सत्य है उतना ही सत्य यह है कि उसकी आन्तरिक वृत्तियाँ मन्द हुई हैं । तटुल बयालिय में अवसर्पणी युग के मनुष्य की अन्तरवृत्ति और व्यवहार के अवसर्पण का चित्र खींचते हुए लिखा है—“मनुष्य की क्रोध, मान, माया और लोभ की वृत्तियाँ क्रमशः बढ़ेंगी । तोल-माप के अप्रामाणिक उपकरण बढ़ेंगे, तुला का वैषम्य, मान का वैषम्य, राजकुल का वैषम्य, वर्ण का वैषम्य इस प्रकार वैषम्य बढ़ेगा, धान्य बलहीन हो जायेगा, उसमें मनुष्यों की आयु कम होगी ।”

ज्यो-ज्यो आन्तरिक वृत्तियों का विकार बढ़ता है, त्यो-त्यो स्थितियाँ जटिल बनती हैं । रोग का मूल अन्तर का क्षय है, मनुष्य बाहरी विकार से चुं विया गया है, वह अभी इस प्रश्नवाचक चिन्ह का उत्तर नहीं पा सका है कि वर्तमान युग विकास का युग है या ह्रास का ?

उद्देश्य

अणुव्रत-आन्दोलन का उद्देश्य है—जीवन के मूल्यों को बदलना । यह कार्य सरल नहीं है । एक प्रकाश की रेखा अवश्य है । युद्ध और शीत युद्ध के थपेड़ों

धीरे धरे-सस्त्रों की स्वर्णों से मनुष्य बंधे वन चुका। अब उसके सामने आन्तरिक वृत्तियों को पवित्र बनाने के प्रतिरिक्त द्वारा विकस्य नहीं रहा। अब बीक रहा है कि आन्तरिक वृत्तियां जो ही जमी तो प्रसय पूर नहीं है। इस आन्दोलन की ये प्रपेक्षाएँ हैं—मनुष्य धरेनिष्ठ न बतकर धार्मिकानिष्ठ बने। नैतिक विकास को मुख्य न मानकर आध्यात्मिक चेतना को जगाये। धीरे न बतकर जती बने। जीने के स्तर (Standard of living) को गौरा मानकर जीवन-स्तर (Standard of life) को ऊंचा जगाम। एक क्षण में आन्तरिक साम्य को उत्पिठधाती बनाकर वैषम्य का प्रत्य करे।

प्रगति की धोर

धनुषत-आन्दोलन कमस प्रगति की धोर बड रहा है। पाच बर्ष के आरम्भिक समय ये २२ धनुषती बने। सस्या की वृष्टि से यह कोई प्यावा प्रगति नहीं है। किन्तु भोगबाह के विकर समय की प्यति का बस बड रहा है। जनता का वृष्टिकाण बरल रहा है। नैतिक आन्ति की भूमिका जो बल रही है। यही सफलता का सुम चिन्ह है। इससे कोई सन्वेह नहीं कि इस आन्दोलन ने बातावरण को प्रभापित किया है।

समस्य की बिधा

धनुषत-आन्दोलन आति बरल इस क भेरी को गौरा मानता है। यही सही बर्ष भेह के प्रति यी इसका वृष्टि-बिन्धु उषजाती धीरे संहिष्यु है। किसी भी बर्ष को मानने बाधा इसका सस्य बत सकता है। इतना ही नहीं। इसकी रचना के प्राचारमूठ तरक भी सर्वसाधारण है। धार्मिक सत्य प्रचीर्य बहुरचर्य धीरे प्रपरिग्रह ये सर्वबर्षसम्प्राप्त्य तरक है। इन्हे कोई प्रस्वीकार नहीं करता। सस्य योच में इन्हे 'यम' कहा जाता है। पातंजलि ने बस को उषी

१. धार्मिकसस्यास्तेबहुरचर्यपरिग्रहा बमा ॥३॥

वातिरेकपानसमयानवच्छिन्ना सार्वभौममहावतम् ॥३१॥

उक्त धार्मिक प्राधि का धनुषतल बस सार्वभौम धर्मधि सब के साथ सब बसह धीरे सब समय समान पाह से क्रिया जाता है। सब ये महाबल हो जाते हैं। यीसे किसी के नियम निजा कि बहुरी के सिवाम धर्म्य धीरों की हिंसा नहीं कस्या तो यह आति प्रबन्धिधम धार्मिक है। इसी तरह कोई नियम ने

अर्थ में रखा है, जिस अर्थ में जन सूत्र अणुव्रत का प्रयोग करते हैं। महाव्रत शब्द दोनों की भाषा में एक है। पातजलि ने जाति, देश, काल समयानवच्छिन्न नियमों को महाव्रत कहा है। जैन भाषा में आगाररहित पूर्ण त्याग महाव्रत कहलाते हैं। दोनों का तात्पर्य सर्वथा एक ही है। महात्मा बुद्ध की वारणी में ये पाच शील हैं। श्रमण अणु और स्थूल दोनों प्रकार के पापों को वर्जता है। गृहस्थ स्थूल पापों को वर्जता है। तब उसका व्रत अपन आप अणुव्रत हो जाता है। इस्लाम और ईसाई धर्म में अहिंसा, सत्य और अपरिग्रह की भयोदा और शिक्षा है। तात्पर्य एक ही है कि प्रत्येक धर्म मुमुक्षु के लिए जैसे सन्यास का विधान करता है, वैसे ही गृहस्थ के लिए अणुव्रत धर्म का।

अणुव्रत-ग्रान्दोलन में अणुव्रत शब्द जैन सूत्रों में लिया गया है, किन्तु भावना में कुछ अन्तर है। जैन परम्परा की भावना के अनुसार अणुव्रती वह बन सकता है जो सम्यग दृष्टि हो। इसीलिए अणुव्रता को सम्यक्त्वमूलक कहा गया है। इस ग्रान्दोलन में यह भावना नहीं है। जैन दृष्टि को स्वीकार करने वाला ही अणुव्रती बने, ऐसा नहीं है। इसके सम्यक दर्शन की परिभाषा है—'अहिंसानिष्ठ दृष्टि'। अणुव्रती वह बन सकता है, जिस की अहिंसा में निष्ठा हो। यह ग्रान्दोलन सब धर्मों को अहिंसा में केन्द्रित करता है। वास्त-

कि मैं तीर्थों में हिंसा नहीं करूंगा तो यह देश अवच्छिन्न अहिंसा है। कोई यह नियम करे कि मैं एकादशी, पूर्णिमा और अमावस्या को हिंसा नहीं करूंगा तो यह कालावच्छिन्न अहिंसा है। कोई नियम करे कि मैं विवाह के अवसर के सिवाय अन्य किसी निमित्त से हिंसा नहीं करूंगा तो यह समयावच्छिन्न (निमित्त से सम्बन्धित) अहिंसा है। इसी प्रकार सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह के भी भेद समझ लेने चाहिए। ऐसे यम व्रत तो हैं, परन्तु सार्वभौम न होने के कारण महाव्रत नहीं हैं। उपर्युक्त प्रकार का प्रतिबन्धन लगाकर जब सभी प्राणियों के साथ सब देशों में सदा सर्वदा इनका पालन किया जाये और किसी भी निमित्त से इनमें शिथिलता आने का अवकाश न दिया जाये, तब ये सार्वभौम होने पर 'महाव्रत' कहलाते हैं।

—पातजलि योग दर्शन, साधना पद २

१ धम्मपद १८।१०

२ उपासक दशम अ०१

निक बर्न ग्रहणा ही है। सत्य भाषि सेप बत उसीके पोषक या सहायक हैं। ग्रहणा-निष्ठ व्यक्ति धार्मिक-शुद्धि के लिए ही प्रती को स्वीकार करेगा मौलिक धर्मसिद्धि के लिए नहीं। प्रती का प्रपना स्वतन्त्र मूल्य है। मौलिक सिद्धि के लिए उनका प्रयोग करना उनकी उन्नतता की प्रबलमानना है। प्रबल व्यवस्था प्रथम से सुधर सकती है तब मना कौन उसके सुधार के लिए बत का कठोर मार्ग प्रपनायेगा। प्रबल के लिए प्रती को प्रपनाये वाला धर्मनिष्ठ हो सकता है। प्रतीनिष्ठ या ग्रहणानिष्ठ नहीं। इसलिये प्रती बनने का उद्देश्य मात्र धार्मिकशुद्धि होना चाहिए। प्रती की शुद्धि बाहरी वातावरण को शुद्ध बनायेगी। उससे धार्मिक और मौलिक व्यवस्था प्रपने प्राप पुष्ट होगी इसमें कोई संशय नहीं। अस्तुतः धार्मिकोत्तर कबल जीवन-शुद्धि की सामान्य भूमिका का समन्वय ही नहीं करना धार्मिक मतमेवों के प्रति सङ्घर्ष भी बनाता है। वह ग्रहणाधारियों का सामाजिक मंच है। इसके सहारे ग्रहणा का उन्नत पोष किया जा सकता है। सब धर्मों का विचार-और मिटे यह दुष्प्रवृत्ति है किन्तु उनका विरोध मिटे यह प्रयोजित है और सम्भव है। अनुभव-धार्मिकोत्तर इसका माध्यम है। इससे धर्म और व्यवहार की खाई को घाट कर उनका समन्वय करना भी इसका उद्देश्य है। तीसरी दृष्टि यह है कि धर्म की शुद्धि विचार और भाषा का धर्म बन रहा है, वह जीवन का धर्म बने।

व्यावहारिक ज्ञान

वर्तमान की मुख्य समस्या धार्मिक है। ऐसा माना जाता है। धर्मशास्त्री इसका समाधान प्रचुर उत्पादन बताते हैं। बाहरी रूप में कुछ हम तुभा-सा लगता भी है किन्तु महाशोक है तब तक यह समस्या मुक्तक जायेगी ऐसा नहीं लगता। इसका निरपवाद समाधान समझ है। प्रती जीवन बहा धार्मिक-शान्ति पैदा करता है बहा धार्मिक समस्या का भी समाधान देता है। प्रती जीवन वर्तमान युग की सर्वोच्च आवश्यकता है। इसके अनुकूल वातावरण बनाना नरका कर्तव्य है। प्रती की प्रतिष्ठा बढ़ेगी तब मुख्य रूप में शुद्धि बढ़ेगी और व्यवहार में धर्म और स्वावलम्बन की प्रतिष्ठा बढ़ेगी।

‘विदेशी बदन नहीं पहुँच जा’—यह उक्त का नियमन है। यत शुद्धि है।

१—जगन्नाथ—धर्मशास्त्र-भकरस २

व्रातों के प्रयोग

मनुष्य का जीवन सरस भी है नीरस भी है पुन भी है दुःख भी है सब कुछ भी है कुछ भी नहीं है ।

जीवन कला है ।

नीरस को सरस पुन को पुन कुछ भी नहीं को सब कुछ बनाने वाला कलाकार है ।

मनुष्य कलाकार है । कला गूढ की अभिव्यक्ति है । गूढ को अभिव्यक्त करने वाला कलाकार है । वह गूढ से भी अदृश है । अतिगूढ को समझने के लिए पूर्व तैयारी अतिव्यक्त चाहिए । अतिस्पष्ट से अभिव्यक्त विनाश नहीं होता । इन दोनों से परे का जो मार्ग है वह अदृश है । वह जीवन की कला है । अत्यन्त के जोर अत्यन्त के समय की धम रक्षाएँ भी पर्य निश्चित बना देती है ।

धीर हिंसा और मूढम अहिंसा के बीच का जो मार्ग है वही बहुता के लिए सत्य है ।

अपरिमित सघ्न और अपरिग्रह के बीच का जो मार्ग है—वही बहुता के लिए सत्य है ।

गूढ और आकर्षण की दुनिया में जीने वाले अहिंसा और अपरिग्रह की ली को न बना सकें—ऐसी बात नहीं है ।

अहिंसक होना सबसे धिरे का बीम है ।

हिंसक बने रहना पहले वर्षों की कमबोरी है ।

जय से जय बढ़ता है शृंखला से शृंखला ।

शूरता का प्रतिफल शूरता और विरोध का प्रतिफल विरोध है ।

हिंसा के प्रति हिंसा का अतिशय प्रतिकूल प्रभाव है ।

भयाकुल मनुष्य उन्मुक्त आकाश में सो नहीं सकता ।

कपाटो से बन्द आश्रय में सोकर भी सुख से नीद नहीं ले सकता ।

शान्ति का प्रकाश अभय के सान्निध्य में फैलता है ।

मन और आत्मा को वेचकर शरीर की परिचर्या करने वाले लोग सुख के सामने शान्ति को आखों से ओझल किये देते हैं । सुख शारीरिक स्रोतों से उत्पन्न होने वाली अनुभूति है । शान्ति का प्रतिष्ठान मन और आत्मा है ।

साधारण लोग शान्ति के लिए सुख को नहीं ठुकरा सकते, किन्तु अशान्ति पैदा करने वाले सुख से बच तो सकते हैं ।

अशान्ति दुःख का कारण है, फिर भी सुख के लिए अशान्ति को मोल लेने में मनुष्य नहीं सकुचाता ।

परिणाम दुःख ही होता है ।

शान्ति के बिना सुख के साधन भी सुख पैदा नहीं करते । शान्ति का मूल्य सुख से बहुत अधिक है । यह सही समझ है । इसमें बाहरी विकास की अपेक्षा भी नहीं है । आन्तरिक विकास के अभाव में पनपन वाली बाहरी विकास की भयकरता या निरकुशता भी नहीं है । सुख के साधन पदाथ, उनका सग्रह और उनका भोग है । शान्ति का साधन सयम या त्याग है ।

सग्रह और अशान्ति का उद्गम-विन्दु एक है । सामान्य स्थिति में वह अभिव्यक्त नहीं होता । सग्रह के विन्दु उधर रेखा बनाते चलते हैं तो उधर अशान्ति भी सब रेखा पर बढ़ती जाती है ।

सग्रह की भूख सबको है, अशान्ति को कोई नहीं चाहता ।

मन को दावानल में डाले और वह जले भी नहीं, यह कैसे होगा ?

कार्य-कारण का सही विवेक किये बिना भटकना नहीं मिटेगा ।

दो-सौ वर्ष पूर्व आचार्य भिक्षु ने कहा—परिग्रह से धर्म नहीं होता, तब यह बहुत अटपटा लगा ।

युद्ध परिग्रह के लिए होते हैं, अणुबम भी उसीके लिए बनते हैं ।

अधिकारों के उपार्जन में क्रूरता बरतनी पड़ती है ।

उनकी सुरक्षा के लिए और भी अधिक ।

अधिकार-दान या धन-दान क्रूरता का आवरण है ।

घोषण का पोरछ करने वाले शान्तिवादी की प्रपञ्चा परानी बहुत मोष्ठ है।

घोषण न करने वाला स्वयं शान्त है चाहे वह एक कौड़ी भी न ले।

घोषण का द्वार खुला रख कर शान्त करने वाला हजारों को मृत कुत्तों को देने वाला कभी शान्त नहीं हो सकता।

शान्तिवादी की बड़ परिग्रह-विस्तार या अधिकार-विस्तार की भावना है। दुःख की बड़ प्रशान्ति है। इसीलिए तो मुक्त-संघर्ष के हजारों वैज्ञानिक उपकरणों के सुलभ होने पर भी मुक्त संघर्ष होता जा रहा है। समय और शान्ति कितारा कमती जा रही है।

ये अधिक गहराई में नहीं जाऊंगा। कौड़ी गहराई में बड़े बिना प्रति भी नहीं होनी। पेट का पकड़ बिना बाहरी उपचार से कुछ बनने का नहीं है।

मुक्त के बाहरी उपचारों को बढाने की दिशा में प्रश-मुक्त का प्रवर्तन हुआ है। इसमें मजबूतता के घटने होने लगे हैं। प्रशु बुरा नहीं है वह भयंकर भी नहीं है। मजबूतता मनुष्य से है। भय से भय आता है, समय से समय। अपने मन से समय निकाल लीजिये प्रशु की मजबूतता लप्त हो जायेगी। मन में समय बढता रहा तो प्रशु और अधिक भयंकर बन जायेगा। प्रशुवाले प्रशु वाले से नहीं बढाते। बिनके पास प्रशु नहीं है—वे प्रशु बानों से बढाते हैं। वह मन और स्तुत की टककर है। समता के बमाने में विषमता सफल नहीं हो सकती। इसीलिए समय बढ रहा है। प्रशु की टककर प्रशु से होने लीजिये। समय रहेगा ही नहीं।

स्तुत प्रशुओं से प्रशु-प्रशुओं का प्रतिकार नहीं हो सकता।

प्रशु-प्रशु प्रशु-प्रशुओं के प्रतिकार में लड़ने ली होना मिट जायेगी। प्रति कार के ये दोनों मार्ग बल्लु है।

प्रशुबल संघर्ष का मर्यादा-कथन है। अधिकार और शान्ति सिमट कर अपने शीर्ष में आ जाती हैं। प्रशु का मार्ग प्रबल हो जाता है। प्रशुबलों को हतवीर्य करने का नहीं परम मार्ग है।

“प्रशुबलों के द्वारा प्रशुबलों की मर्यादता का विनाश हो।”

प्रशु के द्वारा शान्त का विनाश हो।

“त्याग के द्वारा सग्रह का ह्याम हो ।”

ये घोष उच्चतम सम्यता, मस्कृति और कला के प्रतीक बर्ने और इस जग्य मे सबका महयोग जुडे तो जीवन की दिशा बदल सकती है ।

अपनी शान्ति के लिए अणुव्रत अपनाडये ।

अपनी शान्ति के लिए अभय बनिये ।

अपनी शान्ति के लिए सग्रह को कम करिये ।

आपके अणुव्रतो की आभा दूसरो को भी आलोक देगी ।

आपका अभय-भाव शत्रु को भी मित्र बनायेगा ।

आपके सग्रह का अल्पीकरण अणु-आयुधो को अपनी भीत मरने की स्थिति पैदा करेगा ।

विश्व के त्रिशिष्ट चिन्तको, लेखको, कलाकारो मे, जो अपने अपने राष्ट्र की सजीव भावनाओ के प्रतीक बन रहा आये है, मैं हृदय की गहरी सवेदना के साथ कहना चाहूंगा कि वे जीवन मे ‘व्रतो के प्रयोग’ की दिशा को व्यापक बनाने मे लगे । हमारे मयम से हमारा हित होगा, दूसरो का प्रेरणा मिलेगी । थोडा-बहुत दृष्टिकोण बदला तो व्यापक हित होगा ।

अहिंसा, शान्ति और मैत्री के लिए यत्नशील व्यक्ति और सगठनो के सारे निरवच प्रयत्न शृ खलित हो—यह मैं चाहता हू ।

राजनैतिक दलबन्दी से दूर रह कर विगुद्ध मानवता व भाईचारे की दृष्टि से कुछ अन्तर्राष्ट्रीय दिवस मनाए जायें । जैसे—

(१) अहिंसा-दिवस—नि शस्त्रीकरण का प्रयोग किया जाये ।

(२) क्षमा-दिवस—अपनी भूलो के लिए क्षमा मागी जाये और दूसरो को उनकी भूलो के लिए क्षमा दी जाये ।

ये प्रेरणा के स्रोत बन सकते है और बिखरे प्रयत्नो को सामूहिक रूप दे सकते हैं ।

मैं, मेरी भावना और सहयोगियो की सद्भावना के लिए कृतार्थ और कृतज्ञ हू । अहिंसा के प्रयत्नो की सफलता चाहता हू ।

[२ दिसम्बर, १९५६ को दिल्ली मे अणुव्रत सेमिनार मे प्रदत्त भगल प्रवचन]

नीतिक निर्माण का आन्दोलन

प्रखुरतो के प्रति लोगों में मिष्टा बड़ रही है। साम्योत्तम के प्रति मान्य-समझ कर पा रहे हैं। यह मुझ सूचना है। मान्य का जन-जीवन यह महसूस करने मना है कि मौलिक सिद्धियाँ ही सब कुछ नहीं हैं। इनसे परे भी कुछ धर्मिता है जिसे हमें पाना है। हमें यह नहीं सोचना है कि हमारे कार्यक्रमों से कितने नेता ब्रह्म होठे हैं। हमें यह भी नहीं सोचना है कि हमारे कार्यक्रमों की क्या-क्या प्रसंसाएँ हाँपी हैं। परन्तु हमें सोचना यह है कि हमारे कार्यक्रमों से लोगों को क्या मिलता है। हमें यह सोचना है कि हम नीतिक उत्थान से कितने सहायक बन सकते हैं।

मुझे यह देखकर आश्चर्य होता है कि प्रखुरत-आन्दोलन जैसे आन्दोलनों से भी लोग दूर रहते हैं। इसमें अपना कुछ जानते हुए भी वे लज्जित नहीं घाटे वह क्यों? प्रखुरती बनने में सकोच क्यों? लोग सम्भवतः इसे साम्प्रदायिक समझते हैं किन्तु आन्दोलन के ७ वर्षों के सार्वजनिक कार्य-क्रमों से यह मानना भी बड़ चुकी है। अभी कल जब राष्ट्रपति का राष्ट्रीय प्रचार से बातें हुईं तो आन्दोलन के प्रति अपनी मान्यता व्यक्त करते हुए उन्होंने कहा कि आन्दोलन के प्रति मुझ से मेरी मिष्टा रही है। जब कि लोग इसे जानते भी नहीं वे सब से मैं इसका प्रसंसाक रहा हूँ। इसका मतलब किसी सम्प्रदाय विशेष से न रहने के कारण ही यह स्थापक बन रहा है यह सुखी की बात है।

मान्य राष्ट्र के नेता इसे साम्प्रदायिक समझने लगे हैं और इसे लज्जित प्रथम भी मिल रहा है। मान्य का जन-जीवन विनाशक है, यह मैं जानता हूँ। लोगों की दुर्बलताएँ भी मेरे से किसी नहीं हैं। लोग कबाबों से मुक्त नहीं हैं।

वर्तमान स्थिति पर कवि का यह कथन पूरा उतरता है कि—

“दग्धोऽग्निना क्रोधमयेन दष्टो,
दुष्टेन लोभास्यमहोरगेण ।
ग्रस्तोभिमानाजगरेण माया—
जालेन बद्धोऽस्मि कथं भजे त्वाम् ॥”

“क्रोध की अग्नि से मानव का हृदय जल रहा है, लोभ की ज्वालाएँ सारे विवेक को भस्मसात् कर रही हैं। मानरूपी अजगर सारे जीवन को निगल रहा है और माया के पेशीदे जाल में फसा मानव छटपटा रहा है।”

ऐसी अवस्था में व्रतो का पालन सम्भव नहीं होता, ऐसा लोग सोचते हैं। यह नहीं भूल जाना चाहिए कि व्रत ही जीवन के प्राण है, उनके बिना जीवन सुखमय नहीं बन सकता और जीन की कला नहीं आ सकती, अणुव्रत-आन्दोलन जीवन की कला सिखाता है। कपायो से मुक्त करना ही उसका प्रमुख लक्ष्य है।

व्रतो से व्यक्ति श्रमनिष्ठ बनता है। श्रम से जीवन हल्का महसूस होता है। हमारा श्रम में पूर्ण विश्वास है। अभी-अभी मैं अपने इन शिष्यों व साथियों के साथ दो-सौ मील की पैदल यात्रा करते हुए यहाँ आया हूँ। मेरे कन्वे खाली थे, किन्तु इन साधुओं के कन्वे भाराक़ात थे, फिर भी वे आनन्द का अनुभव करते थे। विहार के श्रम से वे थकते नहीं थे। वे श्रम को अपनी साधना का एक प्रमुख अंग समझते हैं। इस कष्टमय साधना में उन्हें अपन लक्ष्य के दर्शन होते हैं। श्रम इनके जीवन का अविभाज्य अंग है। श्रम ही जीवन है, यह हमारा धोष है। परन्तु श्रम सात्त्विक होना चाहिए, तामसिक नहीं।

आज व्रतो के प्रति लोगो में निष्ठा बढ़ रही है, यह ठीक है। किन्तु जब तक इनका सक्रिय प्रयोग जीवन में नहीं होगा, तब तक बुराई मिटेगी नहीं। केवल व्रतो की गुणगाथा गा लेने मात्र से कुछ भी बनने का नहीं है।

यह आन्दोलन विश्व में चल रहे अन्य आन्दोलनों से सर्वथा भिन्न है। यह नैतिक जीवन के प्रति केवल निष्ठा ही पैदा नहीं करता, अपितु जीवन को नैतिक बनाने की दिशा में सक्रिय कदम उठाता है। यह जीवन को भाराक़ात

नीतिक निर्माण का आन्दोलन

भगुवतो के प्रति शोधा में लिप्टा बढ़ रही है। ग्राम्बोसन के प्रति भाव चमक-उमक कर पा रहे हैं। यह धुम सूचना है। भाव का जन-जीवन यह महसूस करने मया है कि नीतिक शिक्षा ही सब कुछ नहीं है। इनसे परे भी कुछ 'ममिताम' है जिस हमें पाना है। हमें यह नहीं सोचना है कि हमारे कार्यक्रमों में कितने नेता इच्छु होगे हैं। हमें यह भी नहीं सोचना है कि हमारे कार्यक्रमों की क्या-क्या प्रदासाए जाती है। परन्तु हमें सोचना यह है कि हमारे कार्यक्रमों से लोगों को क्या मिसता है। हमें यह सोचना है कि हम नीतिक उत्थान में कितने सहायक बन सकते हैं।

कुछे यह बेलकर धारणयं होला है कि भगुवत-ग्राम्बोसन जैसे ग्राम्बोसनों से भी लोग दूर रहते हैं। इसने अपना हित जानते हुए भी ब नब पीक नहीं भाते यह क्यों ? भगुवती बनने में सफ़ोच क्यों ? लोग सम्भवतः इसे साम्प्रदायिक समझते हैं। किन्तु ग्राम्बोसन के ७ वर्षों के साम्प्रदायिक कार्य कर्मों से यह बावना भी दूर नहीं है। सभी कम कम राष्ट्रपति डा राजेन्द्र प्रसाद से बातें हुईं तो ग्राम्बोसन के प्रति अपनी भावना व्यक्त करते हुए पम्होंने कहा कि ग्राम्बोसन के प्रति कुछ से मेरी लिप्टा रही है। जब कि लोग इसे जानते भी नहीं वे ठक से मैं इसका प्रदासक रहा हूँ। इसका लगाव किसी सम्प्रदाय विधेय से न रहने के कारण ही यह व्यापक बन रहा है यह सुणी की बात है।

भाव राष्ट्र के नेता इसे साम्प्रदायिक समझने लगे हैं और इसे उचित प्रदास भी मिल रहा है। भाव का जन-जीवन विवाक्य है, यह मैं जानता हूँ। जोयो को दुर्बलताए भी मेरे से खिपी नहीं है। लोग कबानो से मुक्त नहीं हैं।

वर्तमान स्थिति पर कवि का यह कथन पूरा उतरता है कि—

“दग्धोऽग्निना क्रोधमयेन दष्टो,
दुष्टेन लोभाख्यमहोरगेण ।
प्रस्तोभिमानाजगरेण माया—
जालेन बद्धोऽस्मि कथं भजे त्वाम् ॥”

“क्रोध की अग्नि से मानव का हृदय जल रहा है, लोभ की ज्वालाएँ सारे विवेक को भस्मसात् कर रही हैं। मानरूपी अजगर सारे जीवन को निगल रहा है और माया के पेचीदे जाल में फसा मानव छटपटा रहा है।”

ऐसी अवस्था में व्रतो का पालन सम्भव नहीं होता, ऐसा लोग सोचते हैं। यह नहीं भूल जाना चाहिए कि व्रत ही जीवन के प्राण हैं, उनके बिना जीवन सुखमय नहीं बन सकता और जीने की कला नहीं आ सकती, अणुव्रत-आन्दोलन जीवन की कला सिखाता है। कषायों से मुक्त करना ही उसका प्रमुख लक्ष्य है।

व्रतो से व्यक्ति श्रमनिष्ठ बनता है। श्रम से जीवन हलका महसूस होता है। हमारा श्रम में पूर्ण विश्वास है। अभी-अभी मैं अपने इन शिष्यों व साथियों के साथ दो-सौ मील की पैदल यात्रा करते हुए यहाँ आया हूँ। मेरे कन्धे खाली थे, किन्तु इन साधुओं के कन्धे भाराक्रांत थे, फिर भी वे आनन्द का अनुभव करते थे। विहार के श्रम से वे थकते नहीं थे। वे श्रम को अपनी साधना का एक प्रमुख अंग समझते हैं। इस कष्टमय साधना में उन्हें अपने लक्ष्य के दर्शन होते हैं। श्रम इनके जीवन का अविभाज्य अंग है। श्रम ही जीवन है, यह हमारा घोष है। परन्तु श्रम सात्विक होना चाहिए, तामसिक नहीं।

आज व्रतो के प्रति लोगो में निष्ठा बढ रही है, यह ठीक है। किन्तु जब तक इनका सक्रिय प्रयोग जीवन में नहीं होगा, तब तक बुराई मिटेगी नहीं। केवल व्रतो की गुणगाथा गा लेने मात्र से कुछ भी बनने का नहीं है।

यह आन्दोलन विश्व में चल रहे अन्य आन्दोलनों से सर्वथा भिन्न है। यह नैतिक जीवन के प्रति केवल निष्ठा ही पैदा नहीं करता, अपितु जीवन को नैतिक बनाने की दिशा में सक्रिय कदम उठाता है। यह जीवन को भाराक्रांत

नहीं बनाता चारमुख्य करता है। एक बार इसमें प्रवेश कर लेने पर व्यक्ति सबसे सूझने का विचार नहीं करता। बत व्यक्ति में बिपक जाते हैं। ज्यों-ज्यों भटा बढ़ती है त्यो-त्यो जीवन बतमय बनता जाता है। भूदान में व्यक्ति कुछ भूमि का दान कर अपनी जिम्मेवारी से छुट सकता है किन्तु इस धान्योसन से वह छुट नहीं सकता। ज्यों-ज्यों समय व्यतीत होता है त्यो-ज्यों जीवन में जिम्मेवारियां बढ़ती जाती हैं।

मै मानता हू कि व्यक्ति एकाएक पती नहीं बन सकता किन्तु अपनी पापना प्रतामिमुख रकता है तो किसी अवसर पर व्यक्ति पती बन सकता है। मै सदा धारावासी रहा हू। धाज धान्योसन के प्रति सद्भावनाए बढ रही हैं तो वह बिन भी बूर नहीं जबकि समस्त बनों में नीति की प्रतिप्य होमी।

बती बनने में संकोच नहीं होना चाहिए। जनसाधारण के बीच बतों को बढ़ावा करना भीव धाबम्बर समझते है यह जनकी भूज है। जनसमूह के बीच किन्ने बये सक्त्सो से नात्मबस बढ़ता है जिम्मेवारी घाती है—ऐसा मेरा अनुभव है।

प्रशुपठ-पोष्ठी धायको नाना प्रकार के विचार दे रही है। विचारों की क्षति धाकार को उत्पन्न करती है। बखुबतो पर धाय विचार करें। जसकी बावना को अपने मिथो तक पहुँचाए धीर जीवन को तबतुम्न बनाने का प्रबास करें।

[३ दिसम्बर, १९५१ को दिल्ली में धगुबत सेमिनार में दूसरे दिन प्रवक्त प्रवचन]

सुख और शान्ति का मूल : संयम

प्रकाश को प्रकाशित करने के लिए दूसरे प्रकाश की आवश्यकता नहीं होती। यदि स्वयं में प्रकाश नहीं है तो वह दूसरों को भी प्रकाशित नहीं कर सकता। यही “व्यक्तिवादी सिद्धान्त” का आधार है। इसका फलित यह है— यदि व्यक्ति शुद्ध है तो समाज भी शुद्ध होगा, यदि व्यक्ति अपवित्र है तो समाज भी अपवित्र होगा।

“मनस्येक वचस्येक कल्प्येक महात्मनाम्” यह सच है। किन्तु सभी मनुष्य करके ही कहे, यह मुश्किल है। जो करता है, उसे ही कहने का अधिकार है, यह एकान्तवाद ठीक नहीं। अच्छा उपदेश सबको मान्य होना चाहिए। हम वीतराग नहीं फिर भी उपदेश करते हैं। सुधर्मा स्वामी भगवान् की वाणी के आधार पर बोलते थे। उसी प्रकार हम वीतराग न होते हुए भी वीतराग की वाणी के आधार पर बोलते हैं, यह अनुचित नहीं कहा जा सकता।

आज आडम्बर का युग है। प्रत्येक कार्य में आडम्बर दीखता है। व्रतो के पालन में भी आडम्बर दीखता है। इसी आशय को स्पष्ट करते हुए एक कवि ने कितना सुन्दर कहा है —

वैराग्यरग परषञ्चनाय, धर्मोपदेशो जनरञ्जनाय ।

घादाय विद्याध्ययन च मेऽभूत् कियद् ब्रुवे हास्यकर स्वमीश ॥

लोग विरक्त बनते हैं दूसरों को ठगने के लिए, धार्मिक उपदेश जन-रजन का साधन बना हुआ है, ज्ञानार्जन वादविवाद के लिए किया जाता है, इससे अधिक हास्यास्पद स्थिति और क्या हो सकती है?

जब तक जीवन-व्यवहार में दम्भ रहेगा, हिंसक वृत्तियाँ रहेंगी, तब तक

शान्ति का समावेश जीवन में हो सके' यह कम सम्भव मन्ता है। शान्ति प्राप्ति और समय पर प्राप्ति है। शास्त्रों में कहा है—

दुःखं तत्रापि यमं तत्रापि, कामं तत्रापि, उषर्षि विपु ।

अन्यत्रापि सुसमाप्तिं श्रम्या सुतत्त्वं च विमान्दं जेत विवक्षु ॥

हाथ पैरों का सबम वाली का समय इन्द्रियों का समय करने वाला व्यक्ति और जो अप्यारम में लीन रहता है वही साधु है, महान् है। ऐसे व्यक्ति को ही शान्ति प्राप्त होती है।

सबम और प्राप्ति के मार्ग वैयक्तिक जीवन को तो मानते ही हैं। उल्टे प्रागे बढकर के सामाजिक और राष्ट्रीय जीवन में भी शान्ति का स्रोत बहा बेटे है। मेरा विश्वास है कि विश्व-शान्ति का इस प्रकार प्रादुर्भाव होना व इसी प्रकार वह प्रमित होयी।

अशुभम व ह्यदुःखोऽननम द्वारा शान्ति जाने वाले भवकर समय के मुह में हाथ डालकर समूह प्राप्त करना चाहते हैं। यदि इसार शान्ति और सुख चाहता है तो उसे अशुभों के मार्ग पर आना हाया प्रत्यक्षा वह मटकता ही रहेगा।

[४ दिसम्बर, १९२६ को दिल्ली में अशुभत सेमिनार में प्रवक्त वीरान्त प्रवचन]

: २२ :

व्रत का जीवन में महत्त्व

जब कभी भी नमार में शान्ति हुई या होगी तो उसमें अहिंसा का प्राय रहता है और रहता। अहिंसा का जीवन में आचरण ही व्रत है। व्रत में जीवन में मकल्प आता है। वह व्यक्ति नहीं होता, मर्यादा होता है। जीवनभर उसका पालन करना आवश्यक होता है। यदि किसी ने श्राव नहीं पीने का व्रत ले लिया है तो उसे निभाना उसका कर्तव्य हो जाता है। उस तरह व्रत मन का पहरेदार है। मनुष्य का मन यदि डाग भी जाये तो पहरेदार के रूप में व्रत उसे उसी समय मचेत कर सकता है। व्रत का जीवन में इमीलिए बड़ा महत्त्व होता है।

साधारणतया मनुष्य का जीवन कुतर्कमय नहीं होता। समग्र परिस्थिति या कर्मोदय से उसमें बुराईया घर कर जाती है। जिन प्रकार का वादा एक सुगन्धित म्यान होता है, उसमें कोई दुःख प्रसन्न नहीं सकता, पर उसमें भी जब दागें हो जाती हैं तो कोई भी अन्दर प्रवेश कर सकता है। आदमी की अपेक्षा पशु इस विद्या में अधिक प्रवीण होने है और पशुओं में भी गवा अधिकतर बाड़ों को चीर कर अन्दर घुस जाता है। उसी प्रकार समग्र या परिस्थितिबध मनुष्य में दुर्गुण घर कर लेता है। यदि बाड़ों को सुगन्धित करना है तो उसके लिए इतना ही नहीं है कि गवाँ को अन्दर से निकाल दिया जाये, पर इसके लिए यह भी आवश्यक है कि फिर से उनके प्रविष्ट न हो सकने के लिए उन दरारों को भी ढाँटा जाये। यही काम व्रत का है। जो अवगुण आत्मा में घर कर गये हैं, उन्हें निकाल कर पुनः न आने देना ही व्रत का अर्थ है।

घर का भार क्यों ?

बुद्ध लोग कह सकते हैं कि वे कोई बुरा काम करते ही नहीं जिससे कि उन्हें घर की भाग्यशक्ता हो। उन्होंने कभी जीवन में भ्रमपान किया ही नहीं और न घर भी करने का विचार है जब फिर घर का यह भार क्या ? पर जब कोई बीड़ी पीता ही नहीं है तब फिर उसे घर भेने में मकोच क्यों होता है ? क्या इस प्रकार घर न भेने की भावना के पीछे व्यक्ति का भय प्रथि ही भावस्वाध नहीं होम रहा है ? व्यक्ति अपने भविष्य के बारे में इतना सन्तोहशील क्यों हो जाता है कि वह बुढ़तापूर्वक यह नहीं कह सकता कि मैं कभी भ्रमपान नहीं करूँगा। बुद्ध निश्चय और घर यह तो एक ही बात है। घर के पीछे एक मनोवैज्ञानिक चरम भी छिपा है। उससे मनुष्य गिरता-निरता भी सहसा बच जाता है।

जीवन एक दरवाजा है। मान लिया जाये उस द्वार से कोई व्यक्ति नहीं जा रहा है पर कोई यह तो नहीं कह सकता कि उधर से कोई घाये ही नहीं। राह चलता कोई भी व्यक्ति उस दरवाजे से धा सकता है। कोई उसे नियेन नहीं कर सकता। यदि कोई चाहता है कि मेरे दरवाजे में कोई भी नहीं चुके तो या तो उसे अपना दरवाजा बन्द करना पड़ेगा या वह फिर कोई दरवाजा बँधना पड़ेगा जो अन्तर धाते हुए व्यक्ति को रोक सके। यही स्थान जीवन में घर का है। अनेक बुरे भोग और अनेक बुराईया घरार में हैं। उन्हें धिगला किसी के घर की बात नहीं है। यदि व्यक्ति यह चाहे कि कोई बुराई मेरे में प्रवेश न करे तो उसका एक ही मार्ग है अपने जीवन में घर प्रहण किये जायें।

दूटने का भय

बुद्ध व्यक्ति कहा करते हैं हम त्याग तो करलें लेकिन भविष्य का क्या पता ? कभी वह दूट जाये तो ? यह तो ऐसी बात हुई कि कोई मोक्ष करने से पहले ही यह कहे कि मैं तो मोक्ष इच्छित नहीं करूँगा कि कहीं मर्जील्युं हो जाये तो ? क्या इस प्रकार मर्जील्युं के उर से मोक्ष छोड़ा जा सकता है ? यह ठीक है कि अपनी पावन-शक्ति से अधिक मोक्ष नहीं करना चाहिए, पर मोक्ष नहीं करने से जीवन कितने दिन जमेगा ? इसी प्रकार घर लेने से पहले ही दूटने की साधका करना व्यर्थ है। अपने धामर्ष्य के अनुसार घर

अनुभव प्रतिज्ञा का मार्ग

अनुभव का मार्ग प्रतिज्ञा का मार्ग है धरती दुनिया से प्रतिज्ञा करने का मार्ग है। दुनिया बड़ा अनुभव में बढ़ती है बड़ा अनुभव को प्रतिज्ञा में बनना होता है। मगवान् महावीर की बाणी है —

अनुभव पट्टिए बहुबन्धुनि पट्टिसोपत्तु लपकेन ।

पट्टिसोपमेव श्रया शायम्बो हीरकानेन ॥

अनुभवमुहो लोको पट्टिसोपो प्राप्तो मुक्तिद्वारम् ।

अनुभवो लतारो पट्टिसोपो तस्स उत्तारो ॥३॥

बहुबन्धुन बनता बाब अनुभव में बहु गही है लेकिन जिसे कुछ करना है कार्यशील बनना है उसे प्रतिज्ञा में बनना होगा। अनुभव का मार्ग मजबूत सरस है धीरे प्रतिज्ञा का इन्तज्जि धीरे भी अनुभव में बनने वाला धार में परिवार की तरह विद्या हो जाता है धीरे प्रतिज्ञा में बनने वाला अपने धर्मोत्तमता को प्राप्त कर अपना स्वल्प प्राप्त कर लेता है। धर्मोत्तम मार्ग कठिन जरूर है काटो का है फिर भी बहु धर्मोत्तम है अत उच्च पर निर्बाध बनते जाना ही अपने आपको सफलता के निकट जाना है। बिना कठिनाई तो रोगी भी नहीं खाई जाती तो साध्य को बिना किसी कष्ट के कैसे पाया जा सकता है? अनुभव का मार्ग प्रतिज्ञात्मक है इसीलिए लोग इसे कठोर साधना कहते हैं। मने ही उन्हें पर बहु भी तो लही ही है कि यह व्यक्ति को अपने धर्म तक पहुँचाने वाला है।

अनुभव का मार्ग

नई व्यक्तियों का प्रसन्न होता है—अनुभव को बनाने की रथा प्राय

शक्यता थी ? किन्तु अणुव्रत आज कोई नवीन तो नहीं है। जैन, बौद्ध, वैदिक आदि धर्म-परम्पराओं में प्राचीन काल से ही इनका विधान किसी न किसी रूप में किया गया है। महाव्रती जहाँ पूर्ण निराश्रय मार्ग में चलता है, अणुव्रती वहाँ अपनी सांसारिक सुख-सुविधाओं का भी कुछ विचार रखता है। अणुव्रती का अहिंसा पर पूर्ण विश्वास होता है। पर वह अणुव्रती ही बनता है, अन्न सकल्प पूर्वक हिंसा से विरत होता है। जहाँ राष्ट्र की, समाज की व व्यक्तिगत सम्पत्ति या कीर्ति पर आक्रमण होता है, वहाँ वह उसका प्रतिकार भी करता है। क्योंकि वह समाज से बंधा हुआ है, अतः रक्षात्मक लड़ाई के लिए 'प्रप-वाद' रखता है। वह झूठ बोलना नहीं चाहता, उसे वह पाप समझता है, फिर भी सामाजिक प्राणी होने पर ऐसा न हो सकने से वह कम से कम अनथकारी असत्य व ऐसा असत्य जिममें उसकी राष्ट्रीय, सामाजिक, पारिवारिक व वैयक्तिक नैतिक सतह भी नीचे की ओर खिसकती है, बोलने से विरत होना अपना कर्तव्य मानता है। वह पूर्णतः अपरिग्रही नहीं बन सकता, क्योंकि वह समाज में रहकर स्वाभिमान पूर्वक ही जीना चाहता है। उसे भोजन भी चाहिए, वस्त्र, मकान व जीवन के अन्य माध्यम भी चाहिए। उनकी पूर्ति के लिए वह भिक्षा-वृत्ति उचित नहीं मानता, अतः वह पूर्णतः सयमी नहीं होता, फिर भी वह शोषण व अन्यायचरणा के द्वारा धन-संग्रह करना नहीं चाहता। केवल अपनी आवश्यकता की पूर्ति ही उसका दृष्टिकोण होता है। वह मानता है—पूर्ण सयम अच्छा है, परन्तु मैं पूर्ण सयमी बनने का अपने में सामर्थ्य नहीं रखता, अतः अणुव्रती ही बनता हूँ।

परिवर्तित दृष्टिकोण

एक समय था जब अणुव्रत का मार्ग इतना कठिन नहीं था। उस समय मानव के जीवन में प्रामाणिकता थी। वे पूजा का संग्रह करते थे, पर शोषण और अन्याय के द्वारा नहीं। युग ने करवट ली। लोग भौतिक विकास की बातें करने लगे। धीरे-धीरे उस विकास का चक्र जोर से घूमने लगा। लोग उसे 'विकासवादीयुग' कहने लगे। किन्तु मुझे लगता है कि यह ह्रास का युग है जहाँ चैतन्य का विकास ही विकास समझा जाता था, वहाँ भौतिक विकास को—जडवाद की वृद्धि को विकास कहा जाने लगा है। युग की स्थितियों ने मानव के दृष्टिकोण को भी परिवर्तित कर दिया है।

दृष्टि-दोष

दृष्टि-दोष के परिणाम यहाँ तक सामने आने लगे हैं कि कुछ मनचले व्यक्ति ब्रह्मिन्ना को अध्यात्मिक बताने लगे हैं। सत्य-मानव व अपरिग्रह व्यवहार को बीते युग की बातें कहने लगे हैं। यह सुनकर मार्मिक पीड़ा होती है। ब्रह्मिन्ना का स्वयं से पावन नहीं किया जा सकता। सत्य जीवन में उतार नही आ सकता। अतः उन्हे अध्यात्मिक या बीते युग का कह दिया जाता है, पर मेरी दृष्टि में ये मार्मिकता और मिथ्यादृष्टि का परिणाम है। दृष्टियाँ दो होती हैं—सम्यक्दृष्टि और मिथ्यादृष्टि। सम्यक्दृष्टि पाप नहीं करता ऐसी बात नहीं है पर वह उसे समझता पाप ही है। अपन पाप को वह बर्म की घोट में छुसाना नहीं चाहता। मिथ्यात्वी गलत का भी सही कहता है। अतः इस बड़बारी युग में मिथ्यादृष्टि का विस्तार हो रहा है। इसीका नाम दृष्टि दोष है।

अर्थबारी दृष्टिकोष

यदि मिल-मालिका का खोपड़ा खोलने व पुष्पी का मोह त्यागने की प्रेरणा भी जाती है तो उत्तर मिलता है—यह तो पुण्य-बन्धन का फल है। पूर्व भव के पुण्य-फल से हमें यह सम्पत्ति मिली है। मुझे इस बात पर हठी जाती है। मने ही वे कर्म का फल न मान कर्मबन्ध के बंधन से अभिज्ञ न हो फिर भी उनके स्वार्थों पर कुठाराघात होता है। अतः कर्मबन्ध की घोट में वे सब कुछ खिसा देना चाहते हैं। स्वार्थ-योपश के लिए कर्मबन्ध की दुहाई देना सचमुच आश्चर्य की बात है। इसी प्रकार अन्ध समूह व्यक्तियों से भी कहा जाता है तो वही उत्तर मिलता है। एक चिन्तक इसका यह निष्कर्ष निकालता है कि मनुष्य का दृष्टिकोष निरालम्ब अर्थबारी बन गया है। अतः का मनुष्य 'सर्वे बुद्ध्या काचनमात्मयस्ति' को अपना आधार बनाकर उस पर अपने यात्री जीवन का महल बना करता जाहता है। ऐसी स्थिति में भव हरि के उस पक्ष का स्मरण हो आता भी स्वाभाविक है जिसमें उन्होंने अर्थबारी मनुष्य की मतो-बचाओ का बहुत ही यत्न किया है। वह पक्ष इस प्रकार है —

आतिर्मनु रतात्म पुण्यवस्तुत्पात्तवो गच्छता-
 न्मनो वीरतादात् फलस्वमित्यतः सम्ब्रूता बन्धुना ।

शौर्ये वैरिणि वञ्चमागु निपतात् त्वर्थो स्तु न केवलम्,
येनैकेन विना गुणास्तृणलघ प्राया समस्ता इमे ॥

मनुष्य की सग्रहशील वृत्ति को देखकर कवि अव्यक्त प्रश्न करता है और उससे जो उत्तर प्राप्त हो सकता है, उसे उसी की भाषा में अपनी कविता में प्रमुख रूप से आवद्ध करता है। कवि का प्रश्न है—हे मनुष्य! इस प्रकार केवल एक धन के पीछे ही पड़े रहने से तेरी जानि (समाज) रसातल की ओर चली जायेगी? उत्तर मिलता है—चली जाये, मुझे उससे क्या लेना-देना।

प्रश्न—तेरे सारे गुण कलकित होकर रसातल में चले जायेंगे।

उत्तर—चले जायें।

प्रश्न—कुलाचार नष्ट हो जायेगा, जैसे पर्वत से गिर कर कोई भी वस्तु चूर-चूर हो जाती है।

उत्तर—हो जाये।

प्रश्न—तेरा परिवार तेरी इस सग्रह-वृत्ति पर क्या कहेगा, वह भी तो तू सोचता होगा?

उत्तर—परिवार भाड में जाए।

प्रश्न—इस प्रकार तू अपने शौर्य को क्यों लज्जित करता है?

उत्तर—शौर्य क्या होता है? चाहे उस पर वञ्चपात भी हो जाये, मेरा उसमें क्या विगडने का है?

प्रश्न—तो तुझे क्या चाहिये?

उत्तर—केवल धन, जिसके विना ये सारे गुण तृण के समान हैं। यदि मेरे पास धन है तो सब कुछ है और नहीं है तो कुछ भी नहीं है।

अहिंसकों का कर्तव्य

ऐसी स्थिति में अहिंसकों का कर्तव्य होता है कि इस प्रकार के गलत दृष्टिकोण को सुधारें। यह एक बहुत बड़ा सुधार होगा। परतन्त्रता के समय में जिस तरह लोग 'अग्नेजो ! भारत छोड़ो' का नारा लगाते थे, उस तरह आज आवश्यकता इस नारे की है—'बन्धुओ ! स्वार्थ छोड़ो।' ऐसा लगता है कि विदेशी शासन में व्यक्ति जितना गुलाम नहीं था, आज उससे भी अधिक गुलाम है। व्यक्ति आज जितना अपने स्तर से नीचे खिसक कर स्वार्थी बन

रहा है सम्भव है उतना पहले कभी नहीं रहा होगा। यद्यपि यह स्वीकार करना पड़ेगा कि सब व्यक्ति पूर्णतः आचारवान् किसी भी युग में नहीं बन सकते। फिर भी यह नहीं होना चाहिए कि समाज के अधिकांश व्यक्ति एक प्रकार के नैतिक मानबिन्दु से भी नीचे चले जायें। जिस प्रकार तापमान घूम दिवसी से नीचे चला जाता है तो जीवन पुनर हाँ जाना है उसी प्रकार समाज के अधिकांश व्यक्ति भी यदि सर्वसाधारण नैतिक मानबिन्दु से नीचे चले जाते हैं तो समाज किस प्रकार स्वस्थ रह सकता है प्रत्येक व्यक्ति इस पर चिन्तन कर सकता है। यद्यपि हमारा यह दावा नहीं है कि हम सारे विश्व को अहिंसक बना देंगे या उसे पूर्णतः आचार-कुशल कर देंगे। पर प्रयत्न यह है कि जिस तरह रीग और जस्तूरी के समय में हीम की सुस्थ से जस्तूरी का विनाश हुआ जाता है उसी तरह से आज के युग में जीवन के बचने हुए इन मानवजनों में व धार्मिक कार्यों के साहचर्य से मानव-हृदय से नहीं अहिंसा का सर्वथा सोप ही न हो जाये। यद्यपि सोप तो नहीं होगा यह तो पूर्ण विश्वास है फिर भी हिंसा अहिंसा पर इतनी अधिक न जा जाये कि अहिंसा प्रभावहीन हो जाये और हिंसा को कुमकर पौधे का मौका मिल जाये। हिंसा के प्रकार के लिए आज जितन उपक्रम किए जा रहे हैं अगर उतने अहिंसा के प्रकार के लिए किये जाते तो विश्व-शांति की पुकार करनी नहीं पड़ती। अपितु शांति में ही स्वयं व्यक्ति का प्रतिष्ठान होता। आज अहिंसकों की संख्या कितनी है? और जो है उसमें भी अधिकांश अहिंसक केवल अहिंसा की बात ही करते हैं। उनके जीवन-सम्वहार में सात्विकता व प्रामाणिकता भी नहीं है और हृदय में अहिंसा के प्रसार की उतनी उद्यम भी नहीं। बहुत कम व्यक्ति ऐसे हैं जिनके हृदय में अहिंसा के प्रसार की सच्ची उद्यम है। अहिंसकों का बड़ी कार्य है कि अहिंसा के पल्लव को मारें रें। यह काम इतना सरल नहीं है पर प्रकाश की रेखा प्रथम है। यदि सच्ची जनन के साथ काम किया जाये तो बहुत कुछ सफलता मिल सकती है।

वर्तमानिक जगत् विषम स्थितियों को सुधारने के लिए आवश्यकता अनुभव हुई कि एक ऐसी योजना प्रस्तुत की जाये जिससे विषमता का समीकरण हो। इसके ही परिणामस्वरूप धरुवरी-संघ की स्थापना की गई।

भ मानता ह —यह कोई आर्थिक, राजनैतिक या भौतिक सुख-सुविधाएँ प्रदान करने वाली योजना नहीं ह, बल्कि एकमात्र चरित्र-उत्थान का योजना है । इस योजना में सम्मिलित होना वाला व्यक्ति शोषण में पूजा का उपाजन नहीं कर सकता, धन नहीं कर सकता व अन्यान्य अनैतिक कार्यों को भी अपने जीवन में प्रथम नहीं दे सकता । वह तो सत्य और अहिंसा का निष्ठावान् होता है ।

गुजरात प्रदेश में इस योजना को लेकर मेरा प्रथम आगमन हुआ है । लोग त्याग और चरित्र की आदर्श-परम्परा को समझते हुए इस योजना को अपनायें ।

[१४ मई, १९५४ को अहमदाबाद में गुजरात प्रादेशिक भारत सेवक समाज द्वारा आयोजित अणुव्रत प्रेरणा दिवस के अवसर पर प्रदत्त प्रवचन]

अणुव्रत की आधार शिला

महाव्रत और अणुव्रत

आचार-श्रेय से घट भी अणुव्रत और महाव्रत इन दो भागों में विभक्त हो जाते हैं। महाव्रत यानी पूर्ण व्रत अणुव्रत यानी छोटे-छोटे व्रत। यह कोई व्रतों का विभाव नहीं है पर प्रवृत्त करने वालों की समता के आधार पर व्रत भी महा और अणु इन रूपों में घटा जाते हैं। जो महाव्रत का पालन नहीं कर सकता वह अणुव्रतों को बहुरा करता है। जैसे कोई एक व्यक्ति पूरी रोटी खा लेता है इसका एक मात्र पूरी रोटी नहीं खा सकता तो वह टुकड़े-टुकड़े करके कई बार खाता है। ठीक इसी प्रकार जो महाव्रत का पालन नहीं कर सकता वह अणुव्रतों का पालन करता है।

अणुव्रतों को कोई भी ग्रहण कर सकता है। एक किसान स्वयंकार, नेता वीर वकील कार्यकर्ता याई बहन सब कोई अपना अपना धर्म्य करते हुए भी अणुव्रतों बन सकते हैं। अणुव्रत का अर्थ है—कोई भी व्यक्ति चाहे जो धर्म्य करता है पर उसमें विकृति नहीं आनी चाहिए। इस प्रकार अणुव्रत प्रत्येक व्यक्ति को जहाँ वह रहे रहा है जीवन को मानने की बात बताता है।

परिस्थिति और नैतिकता

अणुव्रत की आधारशिला है—संयम। इसीलिए हम संयम के आधार पर ही मन-बीजन का परिचय करना चाहते हैं। कई भोग परिस्थितियों को बरत कर जीवन को बरतने में निश्चल करते हैं पर बाहरी रूप से यह कुछ सही लगते हुए भी अन्ततः पूर्ण नहीं है। क्योंकि परिस्थिति के बदल जाने से जीवन बरत ही जाने यह एकान्तव्य संयम नहीं है। यद्यपि अन्ततः विपन्न अवस्था में परिस्थितियाँ अनुभव को अपने कर्तव्य-व्यय से विचलित कर

सकती है। 'बुभुक्षित किं न करोति पापम्' यह एक उक्ति है, पर कुछ ऐसे उदाहरण भी सामने आते हैं, जहाँ अति सकट और अभाव में रहकर भी मनुष्य अपनी मानवता की रक्षा करते हैं। सम्भवतः आज तो नैतिक लोगों में उनकी संख्या अधिक होगी, जो अभाव में पलते हैं। वे देश जो साधन सम्पन्न हैं और जहाँ अभाव सम्भवतः बहुत कम है, वहाँ भी अनैतिकता नहीं होती। इसलिए अनीति को केवल अभावोत्पन्न मान लेना ही उचित नहीं लगता। फिर भी अभाव को मिटाने के लिए कुछ लोग प्रयत्न करते ही हैं। हमारा काम है, परिस्थिति के रहते हुए भी मनुष्य को सयम की ओर प्रेरित करना। साधना का पहला सूत्र भी यही है कि मनुष्य परिस्थिति के रहते हुए भी मानवता की रक्षा करे। यद्यपि यह साधना कठिन है, पर है उत्कृष्ट कोटि की। यह कोई बड़ी बात नहीं है कि धन प्राप्त हो जाने पर मनुष्य अनीति न करे। पर बड़ी बात तो यह है—'तच्चित्र यदि निधनोपि मनुज पाप न कुर्यात् क्वचित्' अर्थात् निधन होकर भी मनुष्य पाप-कर्म नहीं करे। विकार के साधन रहने पर भी जो मनुष्य विकारग्रस्त नहीं होते, वे महान् हैं। शास्त्रों में कहा गया है—

वत्थ गन्ध मलकार इत्थिओ सयणाणि य ।

अच्छवा जे न भु जन्ति न से चाइत्ति बुच्चइ ॥

जेय कन्ते पिए भोए लद्धे विपिट्ठी कुब्बइ ।

साहीणे चयइ भोए से हु चाइत्ति बुच्चइ ॥

साधन सामग्री के प्राप्त नहीं होने पर जो उनका उपभोग नहीं करता है, वह त्यागी नहीं है। त्यागी तो वह है, जो उनके प्राप्त होने पर भी उन्हें ठुकरा देता है। इस दृष्टि से अणुव्रत का लक्ष्य है, परिस्थिति के रहते हुए भी उसका सामना किया जाये।

सब धर्मों का समन्वित रूप

अब तक भी कुछ लोग अणुव्रत आन्दोलन को साम्प्रदायिक मानते हैं, जब कि सारे राष्ट्र में इसे मान्यता मिल चुकी है। इसे तेरापथ का नवीनीकरण मानना बिल्कुल गलत है। अणुव्रत किसी भी धर्म विशेष का आन्दोलन नहीं है, बल्कि सब धर्मों का समन्वित रूप है। दूसरी

दृष्टि से नैतिक पक्ष पर विशेष बल देने से अणुवृत्त-आन्दोलन धार्मिक की प्रेरणा नैतिक आन्दोलन है। इसीलिए अपने जीवन को नैतिक बना कर एक मनुष्य किसी भी धर्म विषय की भावना है तो अणुवृत्त उसका हाथ नहीं पकड़ता। एक अणुवृत्ती यदि वह अपने जीवन को उन्नत बना लेता है फिर चाहे वह मुक्ति-पूजा करता है चाहे वह मस्जिद में जाता है या धीरे भी किसी धर्म विशेष की उपासना करता है तो इससे अणुवृत्त में बाधा नहीं आती। यद्यपि अणुवृत्त को अपमानार्थ मनुष्य धार्मिक बनता है पर वह किसी धर्म विशेष की मान्यता को प्रदानता देता है या नहीं यह प्रश्न कोई विशेष महत्त्व नहीं रखता। एक अणुवृत्ती तेरापकी तो ही यह आवश्यक नहीं। इस दृष्टि से अनागत धार्मिक आन्दोलन की प्रेरणा नैतिक आन्दोलन धार्मिक है।

अणुवृत्त आन्दोलन बन का आन्दोलन है। जो अणुवृत्ती बनता है उसे कुछ बत-बहस करने पड़ते हैं। पर यह भूल नहीं जाना चाहिए कि केवल बत-बहस ही सब कुछ नहीं है। बत तो जीवन की एक विद्या मान है। इससे व्यक्ति को जाने बहने का रास्ता मिल जाता है पर वस्तुतः तो यह भावनामूलक है। बत का मग न हो इसके लिए लक्ष्य रखना तो आवश्यक है ही पर इसके साथ-साथ व्यवहार की देखभाल भी प्रति आवश्यक है। एक काम करने में बत का मग तो नहीं होता पर व्यवहार अच्छा नहीं मयता तो अणुवृत्ती को उस से बचना चाहिए। इस दृष्टि से अणुवृत्त-निर्माण से धीरे भी बहुत कुछ है और वह है जीवन को सरल व वास्तविक बनाना।

अणुवृत्ती का व्यवसाय क्या हो ?

एक प्रश्न है अणुवृत्ती को किस प्रकार का व्यापार करना चाहिए ? यह प्रश्न इसलिए सामने आता है कि कहीं सधु उद्योगों को प्रथम विभागा रहा है और कहीं बड़े उद्योगों को। होता ही प्रकार के विचार अपने-अपने पक्ष की स्वाध्याय में उर्क-बल से काम लेते हैं। पर अणुवृत्त-आन्दोलन इस दार्शनिक विचार में नहीं जाता। उसका तो मही सहज परामर्श है कि कोई व्यक्ति चाहे जो भी व्यवसाय करता है, पर उसमें अनैतिकता न बरते। वह आवश्यक नहीं है कि अणुवृत्ती अपने-अपने क्षेत्रों से उलझ कर एक ही प्रकार के व्यापार के पीछे नय चारें। इससे अणुवृत्त एक ही विशेष में व्यर्थ जाता है। अणुवृत्त

तो एक खुली चीज है। हर एक व्यक्ति के लिए, चाहे वह किसी भी धर्म में हो, अनैतिकता न करे यह आवश्यक है। जो अनैतिक व्यापार है, वे तो स्वयं पहले ही छूट जाते हैं। अतः उनमें अनैतिकता का प्रश्न ही क्या? पर इसके बाद जो व्यापार शेष रह जाते हैं, उनमें भी अनैतिकता नहीं हो, यह अणुव्रत का लक्ष्य है। इस दृष्टि से अणुव्रत का क्षेत्र बहुत व्यापक हो जाता है।

व्यापार-निवृत्त व्यक्ति व अणुव्रत

कई लोगों का विचार है—अणुव्रती तो वे ही बन सकते हैं, जो व्यापार से निवृत्त हैं। जो व्यापार करते हैं उन्हें अनेक प्रकार से अनैतिक काम करने पड़ते हैं, अतः वे ही व्यक्ति जो व्यापार से अवकाश ग्रहण कर चुके हैं, अणुव्रती बन सकते हैं। पर यह विचार सही नहीं है। बल ही एक भाई मुना रहा था, उसने व्यापार में एक व्रत अपनाया, किसी भी एक प्रकार की चीज के दो मूल्य नहीं बताना। बच्चा, बूढ़ा, युवक, महिला, ग्रामीण कोई भी खरीदने वाला आये तो उसे एक ही मूल्य बताना। सचाई और ईमानदारी पूर्वक उसे माल देना। इसका असर इतना हुआ कि उसकी दुकान सारे गाव में अच्छी चलने लगी। दूसरे दुकानदार भी इस अनुभव से प्रभावित हुए और उन्होंने भी अपनी दुकान पर यही विधि अपना ली। इस प्रकार नैतिक व्यापार के द्वारा उसकी अपनी ही दुकान अच्छी नहीं चलने लगी, बल्कि सारे गाव में एक प्रकार का नैतिक वायु-मण्डल बन गया। वह भाई कोई अवकाश प्राप्त व्यापारी नहीं है। अच्छी तरह से उसका व्यापार चलता है। तब यह कैसे कहा जा सकता है कि अणुव्रत तो निवृत्त आदमियों के लिए ही हो सकता है?

बहुत सारे लोग उरते हैं—अणुव्रत का पालन कैसे कर सकेंगे? पर अणुव्रत तो जीवन की सर्वसामान्य भूमिका है। इसमें भयभीत होने की क्या आवश्यकता? एक वार व्रतों का जीवन में साक्षात् अनुभव कर लेने के अनन्तर तो प्रत्येक व्यक्ति को अनुपम शान्ति मिलती है। जब तक व्यक्ति इस अनुभव से दूर रहेगा, उसे भय हो सकता है, पर ज्यों-ज्यों वह इसके समीप आयेगा, उसे अपना स्वभाव ही उसमें दृष्टिगत होगा।

[७ जुलाई, १९५७ के प्रवचन के आधार पर]

अणुप्रति-ग्रहण में दो बाधाएँ

विद्यार्थियों के प्राचरस्य की प्रतिक बड़ी-बड़ी बाधाएँ हैं पर अब मनुष्य सारी बाधाओं को ग्रहण नहीं कर सकते। अतः अणुप्रति द्वारा हमने इतना तो कर दिया है कि मनुष्य कम से कम इतनी प्रहिंसा का तो पालन करे ही। अभी तक इस धोर लीगो की प्रवृत्ति कम है। जिस प्रकार चलने चलते सामने बाधा या जाने पर जाता नहीं जाता उसी प्रकार अणुप्रति के प्राचरस्य में भी कुछ बाधाएँ हैं। वे दो प्रकार की हैं—एक तो है विचार की धोर दूसरी है करने की। विचार के बारे में कुछ लीगो के इसे समझने में उमझन पैदा हो गई। कुछ लोग यह समझते सगे हैं कि यह उचित है या नहीं? कहीं यह असत यास्ता तो मही है? बारह बतों की पहले व्यवस्था की ही तो फिर अणुप्रति की पुनर्चना करने की क्या आवश्यकता पड़ी? कहीं इसके प्रचरण के पीछे अपनी क्यापि की भावना तो नहीं है? इस प्रकार के प्रश्नों से अणुप्रति के प्राचरस्य में एक अवरोध पैदा हो गया है। धोर सोच इससे कुछ कुछ गुमराह हो गये हैं। उन्होंने सोचा कि कुछ लोग जो ऐसी बात करते हैं सबमुज ही यह कहीं सब ही तो नहीं है? पर उन्होंने यह नहीं सोचा कि अणुप्रति के जो बात बताई गई हैं वे उनके जीवन के लिए आवश्यक है या नहीं? जिस प्रकार भूला मनुष्य सामने जीवन जाने पर यह नहीं सोचता कि यह कहा से आया है? क्यों आया है? यह कैसे बना है? यह तो उल्लस उस जाने की बैठ जाता है उसी प्रकार अनेकता के इस दुष्काल में जनता की बाहिए तो यह या कि जब उसके सामने यह योजना आई तो क्यों धीरे कैसे के प्रश्नों को छोड़कर उसे अपने जीवन में स्थापन देती। पर जीवन में किसे उतारना या? उन्हें तो बहाना बनाना

था। कुछ एक मनुष्यों का यह स्वभाव होता है कि उन्हें जिसे नहीं अपनाना होता है, उसके लिए वहाना ढूँढते हैं। मेरी समझ में अणुव्रतों के बारे में भी उपरोक्त प्रश्नों का कारण वहाना ही हो सकता है। जिन लोगों को अणुव्रत अपनाना नहीं था और अपने आपको ऊँचा प्रमाणित करना भी आवश्यक था, वे लोग सीधे तो अणुव्रतों को गलत कैसे कह सकते थे? अतः उन्होंने ऐसे प्रश्नों का जाल बिछाकर जनता को गुमराह करना आरम्भ कर दिया। नहीं तो भला सत्य और अहिंसा के प्रसार के बारे में किसी के भिन्न विचार हो ही कैसे सकते हैं? पर प्रसन्नता की बात है कि प्रायः लोगों के वे प्रश्न अब समाप्त हो गये हैं। अब प्रायः लोग यह समझने लगे हैं कि इसके पीछे कोई दूसरा लक्ष्य नहीं है। यह तो जीवन-शुद्धि का ही एक मार्ग व आपवाणी की अनुकृति है। इस प्रकार यह वैचारिक बाधा तो एक प्रकार से समाप्त हो गई है।

अणुव्रत के आचरण की दूसरी बाधा थी कि लोग यह समझने लगे कि कार्यशील व्यक्ति तो इसे अना ही नहीं सकता। समाज की प्रायः यह धारणा थी और आज भी है कि यह तो अवकाश प्राप्त (रिटायर्ड) व्यक्तियों का ही काम है, पर मेरी समझ में यह नहीं आया कि अवकाश प्राप्त है कौन? मरने से पहले तो किसी को भी अवकाश प्राप्त होना मुश्किल है। हर व्यक्ति के पीछे कोई न कोई काम तो लगा ही रहता है। इस माने में अवकाश प्राप्त किसे माना जाये? हाँ, मरने के बाद फिर कोई काम नहीं रहता, फिर व्यक्ति उस जन्म की दृष्टि से अवकाश प्राप्त हो सकता है, पर तब जब मनुष्य स्वयं ही नहीं रह जाता तो अणुव्रतों के आचरण का प्रश्न ही कहा रह जाता है?

लोग समझते हैं—मरने के बाद मुक्ति मिल जाती है, पर यह सही नहीं है। जीवन तो आगे से आगे चलता ही जाता है। कर्म-क्षय होने पर मोक्ष भी मिलता है, पर केवल मरने से ही नहीं मिलता। मोक्ष तो प्रायः इसी जीवन में मिल जाता है। यहाँ से देह-मुक्ति होने पर तो आत्मा उस स्थान में व्यवस्थित हो जाती है, जहाँ से आगे उसका गति सहायक तत्त्व नहीं रह जाता। अतः कार्यशील जीवन में ही जो व्यक्ति अणुव्रती बनेगा, वह अपने

जीवन में शान्ति का अनुभव करेगा ।

शान्त्य की परिभाषा

शान्त्य का अर्थ है—शान्ति और शान्त्य । पर वह शान्त्य वस्तु-निरपेक्ष है । पदार्थ प्राप्त पर जो शान्त्य मिलता है वह तो स्थिक होता है । वस्तु मिलती रहेगी तब तक तो शान्त्य रहेगा और वस्तु नहीं मिली तो फिर दुःख होने लगेगा । किन्तु पदार्थ-निरपेक्ष शान्त्य में यह बात नहीं है । उससे जो शान्त्य होता वह वस्तु प्राप्त पर निर्भर है ही नहीं बल्कि वह स्वामी होता । जब भी अनुप्य उसका स्मरण करने लगी उसे शान्त्य मिलेगा । कम मने उपवास किया जा । एक भाई ने पूछा—उपवास में शान्ति तो है ? मैंने कहा—आज मुझे कम से अधिक शान्ति है । क्योंकि मैंने अनुभव किया कि उपवास में जो शान्त्य मिलता है वह खाने में नहीं मिलता । उद्य शान्त्य की बात ही और होती है । वैसे मैंने अनुभव किया वैसे ही वायव्य धीरो को होता होगा । वह शान्त्य में कर प्राप्त किया जाये यह तो है ही नहीं । इसलिए प्रशुद्ध-शान्त्योत्तन मृतकों के लिए नहीं है वह जीवित लोगों के लिए है, अपने-अपने काम में लगे हुए लोगों के लिए है ।

शान्त्योत्तना प्रत्याशान्त्य

बहुत से लोग सोचते हैं—प्रशुद्ध तो बहुत धीरे धीरे है पर वास्तव में बात ऐसी नहीं है । कम से कम एक बार प्रशुद्ध की नियमावली को तो ध्यानपूर्वक पढ़ें । उसके बहुत से नियम तो सहज ही हैं । कुछ ऐसे नियम हैं, जिनमें सम्भवतः कुछ व्यक्ति भटक भी जायें पर उन नियमों को शान्त्योत्तना-प्रत्याशान्त्य और शान्त्य के लिए रखते हैं । धीरे धीरे हृदय में स्वतः प्रशुद्ध के अनुभव एक धूमि उभार हो जायेगी । मैंने देखा—यहाँ धूमि को दित पहले सूख और से बर्बा जाई । बहुत से घर पानी से भर गये । धीरे-धीरे वह पानी वह बवा या सूख गया । आज तो अपने घरों में भटकते हुए पानी को भजन-अर्पण करीको से निकालने का प्रयत्न कर रहे हैं । इसी प्रकार आप भी बहुत से प्रशुद्ध-नियमों से तो सहज ही निकल जायेंगे क्योंकि आपका जीवन उनके अनुभव है । कुछ इतों में कहा आप भटक जाते

अणुप्रत का मार्ग

शान्ति की परिभाषा

प्राण की दुनिया में शान्ति कौन नहीं चाहता ? पर प्रश्न यह है कि शान्ति के माते क्या है ? शास्त्रों में इस प्रश्न का उत्तर में कहा है—घटि निरोह माहु—निरोह ही शान्ति है। जब तक वृत्तिमा सुखी रहेगी तब तक शान्ति का निर्वाचन पत्र पाना भी असम्भव है। धन कोई शान्ति चाहेगा तो उसे निवृत्ति का पद ग्रहण करना पड़ेगा। यदि कोई पूर्ण निवृत्ति नहीं कर सके तो क्या करना चाहिए ? उसके भिन्न शास्त्रों में कहा गया है—मुद्येण उदेव मोक्ष—शुद्ध क्रिया के द्वारा मोक्ष—शान्ति पाई जा सकती है। शुद्ध क्रिया करने का अर्थ है—अशुद्ध से निवृत्ति। उसका निवृत्तपण ही शान्ति का अर्थ है ही और शुद्धता ही। यदि कोई अशुद्ध क्रिया से पूर्णतः निवृत्त नहीं हो सकता तो कम से कम अशुद्ध प्रवृत्ति का त्याग करे। उसके त्याग के बाद शुद्ध स्वयं रोष रह जायेगा। वह भी शान्ति का सम्बन्धवादी है।

नियेय और विनयेय

अणुप्रत आन्वोचन के बारे में कुछ लोगों का कहना है कि अशुद्ध नियेय विनयेयपरक अधिक है और विनयेयक कम। यह सच है कि जीवन का निरोध पक्ष निर्वाचन है पर उसका विनयेयक पक्ष भी बहुत बन सकता है। इसीलिए कहा गया है—यदि तुम प्रवृत्ति भी करो तो शुद्ध करो। उसमें तुम्हीं शान्ति—शास्त्र शान्ति प्राप्त होगी। अतः धार्मिकों के आचार पर मैं कह सकता हूँ कि अत्येक व्यक्ति अपनी अशुद्ध वृत्तियों का निरोध करे और यदि यह सम्भव न हो तो अधिक से अधिक अशुद्ध प्रवृत्ति करे, यही अणुप्रत का सही मार्ग है।

इसी भावना को हिंसा और अहिंसा शब्द में समझा सकता है। अहिंसा यानी निवृत्ति तथा शुद्ध प्रवृत्ति। हिंसा यानी—अशुद्ध प्रवृत्ति। प्रश्न हो सकता है कि व्यापक हिंसा है या अहिंसा? कुछ लोग हिंसा को व्यापक मानते हैं, पर मेरी दृष्टि में अहिंसा व्यापक है। क्योंकि यदि कोई हिंसा करेगा तो सम्भवतः वह अपने शत्रुओं की ही करेगा। या वही आवश्यकतापूरवश हिंसा करेगा। ज्यादा हुआ तो कुतूहलवश या प्रमादवश किसी की हिंसा कर लेगा। पर दिन के २४ घण्टों में से वह तो केवल सीमित वक्त के लिए ही हुई। कोई भी मनुष्य क्रिया रूप में प्रतिक्षण हिंसा नहीं कर सकता। अहिंसक यदि वह चाहे तो प्रतिक्षण बन सकता है। तब व्यापक हिंसा है या अहिंसा, यह स्वतः स्पष्ट हो जाता है। इस दृष्टि से अहिंसा के नियम बता दिये जायें तो हिंसा अपने आप निरुद्ध हो जायेगी।

निषेध तत्त्व व्यापक होते हुए भी थोड़े में प्रताया जा सकता है। विवायक तत्त्व उस अपेक्षा में कम व्यापक होते हुए भी थोड़े में नहीं प्रताया जा सकता। इसलिए अणुव्रतों में निषेध को अधिक स्थान दिया गया है। वैसे निषेध और विषेय के दोनों रास्ते अमत् निवृत्ति और सत् प्रवृत्ति के रूप में प्रस्तुत कर दिये गये हैं। अपनी शक्ति के अनुसार अपने निर्माण में इन्हें प्रहण किया जा सकता है।

रक्षक ही भक्षक

अणुव्रत आदर्श को मनुष्य जब तक नहीं अपनायेगा तब तक न तो उसका जीवन शुद्ध बनेगा और न उसकी दिशा ही। आज मनुष्य अतिशय क्रूर बन गया है। जो लोग रक्षक थे, वे भी भक्षक बन गये हैं। एक जगल में एक बार कुछ पशुओं ने सोचा—हम निर्बल हैं, अतः कोई भी मार डालता है। हमें कोई ऐसा उपाय खोजना चाहिए, जिसमें कोई भी शक्तिशाली पशु हमारी ओर आख उठाकर देख भी न सके। उन्होंने अपनी सुरक्षा के लिए एक पितृहीन शेर के बच्चे को पाल लिया। इससे अन्य पशु उससे डरने लगे और उनके पास नहीं आते। इस प्रकार एक तरह से वे सारे अभय हो गये। थोड़े दिन तक यह क्रम रहा। शेर का बच्चा भी धीरे-धीरे बड़ा होने लगा। अकस्मात् एक दिन उस शेर के बच्चे ने एक अन्य शेर को दूसरे जानवरों को मारते देखा

अणुव्रत का मार्ग

शान्ति की परिभाषा

प्राण की बुनिया में शान्ति कौन नहीं चाहता ? पर प्रश्न यह है कि शान्ति के माने क्या है ? शास्त्रों में इस प्रश्न के उत्तर में कहा है—सति निरोह भाहु—निरोह ही शान्ति है। जब तक वृत्तियाँ जुड़ी रहेंगी तब तक शान्ति का निर्वाचन पच पामा भी असम्भव है। अतः कोई शान्ति चाहेगा तो उसे निवृत्ति का पच प्रयत्न करना पड़ेगा। यदि कोई पूर्ण निवृत्ति नहीं कर सके तो क्या करना चाहिए ? उसके लिए शास्त्रों में कहा गया है—मुडेरुख उदेह मोक्क—मुड किया के द्वारा मोक्ष—शान्ति पाई जा सकती है। मुड किया करने का अर्थ है—अमुद से निवृत्ति। अतः निवृत्त्यर्थ तो शान्ति का साधन है ही और मुडत्व भी। यदि कोई अमुद किया से पूर्णतः निवृत्त नहीं हो सकता तो कम से कम अमुद प्रवृत्ति का त्याग करे। उसके त्याग के बाद मुड स्वयं शेष रह जायेगा। यह भी शान्ति का सम्बन्धवाही है।

निषेध और विषेध

अणुव्रत आ-बोधन के बारे में कुछ लोगों का कहना है कि उसके नियम निषेधपरक अधिक हैं और विषेधक कम। यह सच है कि जीवन का निरोध पक्ष निर्वाच्य है, पर उसका विषेधक पक्ष भी बहुत बल सकता है। इसीलिए कहा गया है—यदि तुम प्रवृत्ति भी करो तो मुड करो। उसमें तुम्हें शान्ति—शास्त्रव शान्ति प्राप्त होगी। अतः धार्मिकाणी के साधारण पर मैं कह सकता हूँ कि प्रत्येक व्यक्ति अपनी अमुद वृत्तियों का निरोध करे और यदि यह सम्भव न हो तो अधिक से अधिक सत्प्रवृत्ति करे, यही अणुव्रत का सही मान है।

तो समझ भी सुष्ट हिंसा-वृत्ति जागृत हो उठी। उसने भी अपना पत्रा उठाया और पास पड़े एक पत्र पर दे मागा। वह उसी क्षण भरापरासी हो गया। पत्र के बन्धे को भी अपनी शक्ति का मान हुआ और साथ ही साथ मास का स्वार भी उसे पच्छा लगा। अत्र वह प्रतिबिम्ब अपने गिरोह के पशुओं को मारने के लिये बनाया। जो रक्तक या बही भयक बन गया तो उन निरीह पशुओं की क्या स्थिति हुई होगी? क्या बैसी ही स्थिति आज के समाज की नहीं हो रही है? वे ही लोग जिन्हें रक्षा के लिए रखा गया है दूसरों को बिनाश करते नहीं छोड़ते। वे ही ब्रह्मतिक शासन ब्रिह्मिका निर्माण सुरक्षा के लिए हुआ या आज मनुष्य के लिए स्वस के साधन बन गये हैं।

मनुष्य के हाथ में सब कुछ है। वह चाहे तो अपने प्राप्त साधनों का दुरुपयोग कर सकता है और चाहे तो सद्बुपयोग भी। पर आज उनका अधिकतर दुरुपयोग ही हो रहा है। आजकलका है—उस दुरुपयोग को सुभारा जाये पर वह भी तो एक बहुत बड़ी समस्या है कि जो सुभारने वाले हैं वे स्वयं को बिगाड़ गये हैं। अत्र आज सुभार का काम किसी व्यक्ति बिदेप पर नहीं रहा है। वह तो सबका है। इस हेतु से ही अखण्ड-मान्योसन का प्रारम्भ किया गया है पर इस ओर लोगों का ध्यान कम जाता है क्योंकि मान्योसन की पहली शर्त यही है कि सर्व प्रथम व्यक्ति स्वयं सुधरे।

स्वस की ओर मनुष्य की सहज गति है। बिदाचीं छोड़-छोड़ के कामों में भागे रहते हैं। उनको यदि चरित्र-निर्माण की बात कही जायेगी तो सट पीढ़े हट जायेंगे। स्वस सहज है निर्माण कठिन है। बड़ा छोड़ना सहज है पर बनाना मुश्किल है।

बुद्धिया के चार दोर

एक ओर से यह पूछा जाता है—आजकल क्या करते हो? तो उत्तर मिलता है—व्यापार करते हैं पर आजकल व्यापार करना तो बाल को बोधिम में डालना है। कर की कारा और श्रैक की कालिमा से बचना तो आज अस्मय-सा हो गया है। मुझे उनकी यह बुद्धि मरी कहानी सुनते-सुनते हँसी आ जाती है। रंगी-कपड़े के लिए मनुष्य जब इतने कष्ट सह सकता है तो जीवन-विकास की ओर उसका ध्यान क्यों नहीं आता? जीवन-विकास

मे श्राने वाले कण्टो से वह बयो घबडा जाता है ?

ब्लैक का पसा भी आज लोगो के लिए 'बुढिया के घर मे घर कैंग नगात्रे' वाली बहावत चरिताथ कर रहा है। मचमुच पाप का पैसा दजम नहीं हो सकना। हम यह वान लोगो को प्रतिदिन मम भाने ये, पर कुठ एव व्यक्ति हमारी उस बात को अमल मे नहीं लाये। उमीका यह पग्गाम ह कि आज उण्डे के बल पर उन्हे वे बातें माननी पड रही है। अस्तु, जो हुआ सो ता हुआ, अत्र भी समय है, मनुष्य चेतते। जब मनुष्य पैमे के लिए तिल-तिल कर मरन का तैयार हो जाता है तो अणुव्रत के इस राजपथ पर चलने मे उसे सकट बयो अनुभव होता है ?

अपनी छलना अपनी ही विनाशक

अपने द्वारा की गई छलना अपने लिए ही घातक होनी है, यह तथ्य प्रत्येक व्यक्ति को स्वीकार करना पडेगा। एक वार राजा न अपन कारीगर को जो कि उसके यहां काम करना-करता बूढा हो चला था, एक भव्य प्रामाद प्रनाने का आदेश दिया। उसके लिए पर्याप्त साधन भी जुटा दिये गये। कारीगर न तुरन्त काम शुरू कर दिया। मन मे पाप आ गया। उसने ब्रेईमानी की। प्रामाद को बाहर से अति सुन्दर बना दिया और अन्दर मे घटिया माठ लगा दिया। आधे रूपयो का गवन कर गया। कारीगर ने प्रामाद मे राजा को पधारने व उसका उद्घाटन करने के लिए निवेदन किया। राजा ने देखा—महल बहुत सुन्दर बना है। उसने सभा-मण्डप मे बोलते हुए कहा—कारीगर ने महल बहुत ही सुन्दर बनाया है। मे इसकी कला पर पूर्णतया प्रसन्न हू और यह महल मे इसे ही पुरस्कार स्वरूप देता हू। वह तो मन मे छटपटाने लगा। उसने सोचा—मैने राजा के साथ छलना की थी, पर वह तो मेरे साथ ही हो गई। यह सुन्दर प्रासाद कुछ वर्षों मे ही ढह जायेगा। इसी प्रकार अनेक परिस्थितियों मे मनुष्य दूसरो के साथ छलना करता है, पर उसके परिणाम स्वरूप वह स्वय ही छला जाता है। अणुव्रत-आन्दोलन प्रत्येक व्यक्ति को सावधान करता है कि इस प्रकार छलना कोई मनुष्य तो न करे।

बहुत से लोग अणुव्रत के प्रशसक है। पर मुझे यह जानकर खेद होता है कि उनमे से ऐसे भी अनेक लोग है, जिनको यह पता नहीं कि

पशुव्रत के नियम कितने हैं व कौन-कौन से हैं ? ऐसा लगता है—उन लोगों का साहित्य से सम्पर्क रहता ही नहीं। उन छोटी-छोटी बातों के लिए उन्हें बार-बार कहा जाने क्या पड़ उचित होगा ? एक बार बम्बई में भूदान की कार्यकर्त्री बहिन विमला ठककर से देने सामने ही किसी एक भाई ने भूदान के बारे में प्रश्न पूछा। बहिन ने कहा—क्या आपने भूदान-साहित्य भी नहीं पढ़ा है ? उसने उस प्रश्न का जबाब नहीं दिया। प्रभुघनों के समर्थकों व प्रशंसकों का यह पहला कठकप हो जाता है कि वे पशुव्रत के साहित्य को पढ़ें। बहुत-सी बात स्वयं ही समझ में आ जायेंगी। फिर अपने को सभी मान्ति वीर कर निबन्धों को भी प्रहण कर सकेंगे।

अणुव्रत क्या देता है ?

मेरे सामने बहुधा यह प्रश्न आता है कि अणुव्रत युवको के लिए आक-षक क्यों बने ? इसमें ऐसी कौन-सी विशेषता है ? मेरा उत्तर होता है— अणुव्रत तो मानव-मात्र के लिए है। चाहे वह बालक हो या वृद्ध, स्त्री हो या पुरुष। फिर युवक उससे अलग कैसे रह सकते हैं ? पहले मैं भी इसी प्रकार सोचा करता था कि कार्य प्रारम्भ तो कर दिया गया है, पर इसकी प्रतिक्रिया क्या होगी और परिणाम क्या निकलेगा ? जनता का इसमें आकर्षण होगा या नहीं। क्योंकि नये कार्यों के प्रति आर्शकाओं का होना स्वाभाविक भी है। पर अब देश के विभिन्न भागों में प्रयत्न करने व विभिन्न विचारको से मिलने के बाद मेरे ये विचार दूर हो गये हैं। अणुव्रत आज के युग में अत्यन्त आवश्यक है। ये विचार केवल मेरे ही नहीं, पर जितने भी लोग मुझे मिले हैं, चाहे वे साम्यवादी हो या समाजवादी, कांग्रेसी हो या और किसी दल से सम्बन्धित, उनमें दो-चार व्यक्ति भी ऐसे नहीं हैं कि जिन्होंने अणुव्रत की आवश्यकता को स्वीकार न किया हो। उनके इन विचारों से आन्दोलन को बल मिला है।

प्रश्न यह रहता है कि अणुव्रत-आन्दोलन समाज को देता क्या है ? यह सही बात है कि अणुव्रत पैसा नहीं देगा। भला उसके प्रवर्तक के पास जब एक भी नया पैसा नहीं है, जिसने आकिञ्चन्य स्वीकार कर लिया है, वह क्या पैसा देगा ? और यह भी सही है कि वह सीधे तौर पर सामाजिक और राजनैतिक स्थितियों को भी नहीं सुधारता। इस अवस्था में यह प्रश्न सहज है कि फिर अणुव्रत का फलितार्थ क्या होगा ? इसका समाधान है— अणुव्रत और कुछ देना नहीं चाहता, वह केवल दृष्टिकोण को बदलना चाहता है। मैं यह समझता हूँ कि अगर अणुव्रत के इस अभिप्राय को समझ लिया

नया तो सारी समस्याएँ अपने आप सुलझ जायेंगी। दृष्टिकोण का परिवर्तन ही वास्तविक परिवर्तन है और वह है—सोम से त्याग की धार का परिवर्तन विश्वास से सादमी की ओर का परिवर्तन। धार की दृष्टि में बड़ा बड़ा माना जाता है जिसके पास भाग के साबन अविनाशिक हा पर असुख की दृष्टि यह है कि त्यागी ही सबसे बड़ा है। इस एक बात को समझ लेने वाला व्यक्ति ताबो अपने ओकर भी चुकी नहीं हुआ और इस एक बात को नहीं समझने वाला व्यक्ति साबो अपने पाकर भी चुकी नहीं हो सकता।

ज्वलन्त समस्याओं का हल

बोध रहते हैं—आज बेकारी बहुत फैल रही है। असुख बेकारी को किस प्रकार दूर कर सकता है ? मैं समझता हूँ वास्तविक समस्या बेकारी की नहीं है समस्या है—स्वयं की। मैं ऐसे लोगों को भी आशाना हूँ जिनकी धार तो प्रतिमास १ रुपये है और कर्ष प्रतिमास २ रुपये का। भला वह समस्या कैसे सुलझे ? यह सही है कि असुख धार्मिक समस्या को सीधे रूप से नहीं सुना। पर यह भी सही है कि इससे धार्मिक समस्या प्रभावित हुए बिना भी नहीं रहेगी। यदि जीवन सादा होगा तो स्वयं भी अधिक नहीं होगा। फिर धार्मिक संकट भी कैसे रहेगा ? क्या यह धार्मिक समस्या का समाधान नहीं है ? उन स्थितियों के जीवन को भी दबा जाए को ? रुपये मासिक में भी अपना काम अच्छी तरह चला लेते हैं और उन्हें कोई प्रसुप्ति भी नहीं होती अपितु वे अधिक खुश होते हैं। इस पर असुख सीधे तौर पर कुछ न लेकर भी परोक्ष रूप से ज्वलन्त समस्याओं का एक हल प्रस्तुत करता है।

जब एक समाज का दृष्टिकोण जोन मुसक रहेगा तब तक कोई समस्या हल होने वाली नहीं है। धार का वातानरता भोग्यमुक्त है। धार हाथ से छिना कपड़ा बोग नहीं पहन सकते क्योंकि फेंसन चाहिये। मत कपड़ा छिनाने के लिए बाजार जाना पड़ता है। इस तरह घर का काम उठ नया। कला बठ बावैरी तब धार्मिक बोझ पड़ेगा। तो फिर समस्या सुलझे भी तो कैसे ? जहाँ बोडे इन्दी से अपना काम चल सकता है, पेट भर सकता है

वहा अनक प्रकार के पशय खाप विना चैन नही । इससे आर्थिक समस्या तो उग्र होती ही है पर माय म स्वास्थ्य भी मन्तुलिन नही रह सकता । इसका मूल कारण है—सयम का अभाव । अणुव्रत सयम का दृष्टिकोण देता है । उसे अपनात पर दूमगी समस्याए अपने आप समाधान पाती जाती है ।

[१० अक्टूबर, १९५६ को मरदारशहर (राजस्थान) मे अणुव्रत-आन्दोलन के मातवे वापिक अधिवेशन क अवसर पर युवक सम्मलन मे प्रदत्त प्रवचन]

अपुत्रता का महत्त्व

सम्प्राप्ति भङ्गुमुत्तीहि पदिलोहया ।
सन्ने मरुत्तत हुनचात्त प्रयो सन्ने न हिस्तया ॥

पुत्र कृतान्त १११-२

सब प्रकार की मुक्तियों से बुद्धिमान अन्धेपल्लु करे तो वह जानेसा कुछ सबको प्रमिथ है इतलिए वह किसी की हिंसा न करे व किसी को न सताए । अहिंसा ही परम धर्म है और अहिंसा ही सब धर्मों का सार है । धर्म के लिए किये जाने वाले सभी कार्य अहिंसा के पोषक हैं । प्रश्न हो सकता है—अहिंसा पर ध्यान ही इतना जोर क्यों दिया जाता है ? अहिंसा की महिमा सदा से नाई जाती है उसको अपनाते के बिदे ही जाने वाली प्रेरणा भी कोई नहीं है किन्तु यह माना हुआ तथ्य है कि अन्न और पानी की कीमत मूक और प्यास के समय ही होती है । पेट भरवाने व प्यास मान्य हो जाने के बाद उन्हें कोई मार नहीं करता । मांस का जीवन हिंसा से अर्जित व उसके बनेको से अत्यन्त है इसीलिए प्रत्येक व्यक्ति अहिंसा को प्राथमरी दृष्टि से देखता है । इस समय अहिंसा का उपदेश इसलिए भी महत्त्वपूर्ण हो जाता है कि मानव अपनी मानवता को खो बैठा है । मानवीय आदर्शों की प्रमुख्य सम्पत्ति उसके हाथों से निकल गई है । देखनी में १३ अयस्त के दिन मैंने यह प्राक्षा व्यक्त की थी—क्या मानव अपनी मानवता को फिर से प्राप्त करे ?

मनुष्य को हठात् नहीं होना चाहिए और न हीनतावासी ही बनना चाहिए । निराशा से उत्पत्ति उत्पन्न नहीं । मानवत्त प्राप्त होना कहा करते हैं कि हमारा पना हो गया । अतको सोचना चाहिए—कौसी विकट परिस्थि तियों में भी बुनिया में अहिंसक है जो राज व हार से परे है मनुष्य व

प्रतिकूल परिस्थितियों में समभाव रखते हैं। अनेको ऐसे गृहस्थ भी हैं, जिन्होंने अपने जीवन में कभी ब्लैक नहीं किया। व्यापार के लेन-देन में भी ब्लैक नहीं किया और यहाँ तक कि खाद्य सामग्री को भी ब्लैक से नहीं खरीदा। आज भी ब्रह्मचारी हैं, सत्यवादी हैं, स्वावलम्बन से अपना जीवन-यापन करने वाले हैं। यह अवश्य है कि अच्छाईयों की अपेक्षा बुराईयों का पलड़ा भारी है, अतः बुराईयों व पतन की ओर स्वभावतः ही ध्यान चला जाता है। किन्तु केवल पतन-पतन चिल्लाने से क्या होगा? प्रतिकूल स्थिति के समय तो आवश्यकता होती है, उसके विरुद्ध जिहाद बुलन्द करने की, उचित कदम उठाने की। धैर्य के साथ प्रयास किये बिना प्रतिकूल परिस्थिति दूर भी कैसे हो सकती है? विरोध की स्थिति में घबरा जाने वाले दुनिया में कर भी क्या सकते हैं? आशावाद में सफलता रहती है। धैर्य उन्नति का प्रतीक है। विशेष आशा तथा धैर्य को लेकर ही साधुओं द्वारा यह नैतिक आन्दोलन सतत जारी रहता है।

लोग कहते हैं—‘महाराज ! आपको क्या आवश्यकता है, इन नैतिक आन्दोलनों की, आप अपनी साधना करें। समाज के उत्थान और पतन से आपको क्या प्रयोजन है?’ ऐसा कहने वाले भूल करते हैं। समाज की अन्य स्थितियों से हमारा कोई सम्पर्क नहीं, किन्तु जहाँ तक नैतिकता तथा सदाचार के प्रसार का प्रश्न है, हमारा समाज से पूरा सम्बन्ध है। जैन शास्त्रों में चार प्रकार के मनुष्य बतलाये गये हैं, १ स्वानुकम्पी—अपने ही कल्याण का प्रयत्न करने वाले, २ परानुकम्पी—केवल दूसरे का कल्याण करने वाले, ३ उभयानुकम्पी—अपने व दूसरे दोनों के कल्याण का प्रयत्न करने वाले, ४ नो उभयानुकम्पी—अपने व दूसरे किसी के भी कल्याण का प्रयत्न न करने वाले। हमारा समावेश तीसरे प्रकार में होता है। अर्थात् हम उभयानुकम्पी हैं। हम अपनी साधना भी करेंगे और समाज में जो विपन्न वातावरण बनता है, उसका निराकरण भी। हम समाज-निरपेक्ष इसी माने में कहे जा सकते हैं कि समाज को हमारी व्यवस्थाओं की चिन्ता करने की आवश्यकता नहीं है। नैतिक विकास का दायित्व हमारे पर इसलिए भी आ जाता है कि अन्ततोगत्वा समाज-व्यवस्था का मापदण्ड भी धर्म और नैतिकता ही है और

उसके अपने बाह्य साधु ही होते हैं ।

मोर्बों को हम नैतिक जीवन बनाने की प्रेरणा देते हैं । हमारा यह कार्य संपादन न होकर निमित्त ही है । फिर भी हमें तो उसमें अपना काम मिल ही जाता है । जिस प्रकार जो व्यक्ति वस्तु बेचने व खरीदने वाला होता है । एक व्यक्ति बीच में होता है जिसे बताना कहा जाता है । लेने व बेचने जालों में किस को लाभ या हानि होती है, बलास का उससे कोई सम्बन्ध नहीं होता । वह तो जग जालों का परस्पर छोड़ा करा देता है । यदि वह छोड़ा हो जाता है तो उसे अपना पारिभूमिक निष्ठा जाता है और नहीं होता है तो उसे कुछ भी नहीं मिलता । पर हमारी बलासी इससे निम्न है । माम बिके या न बिके कोई बत-बहण करे या न करे हमें तो अपनी बलासी (सर्व्वृत्ति का लाभ) मिल ही जाता है । स्वयं तरना प्रीर लोको को तारना हमारा कार्य है । हमें तो नैतिकता के प्रसार के लिए पुस्कार करना है । भोग चाहे उसका उपयोग करें या न करें ।

न भवति धर्मो भोतुर्बन्धु स्वकालतां हितभवत्वात् ।

बन्धुत्वेऽप्युपहृत्वा बन्धुस्त्वेऽप्येतो भवति ।

हित-भवत्वात् मात्र से ही कोई प्रेक्षा बहिष्कृत नहीं हो जाता किन्तु बन्धु यदि बन्धुवत् बुद्धि से बोल रहा है तो वह अपने आपको धर्म के निकट पाता है । यही बात बन्धु के और हमारे बीच में है । हम अपना सत्काम समझ कर बन्धु को प्रेरणा देते हैं । बन्धु यदि उसे स्वीकार करनी है तो बहुत सुन्दर है और न भी करे तो हमारी उसमें कोई अति नहीं है ।

प्रश्न एक सामने आता है कि उपदेशों का स्थायी प्रसार क्यों नहीं होता ? भारतवर्ष ही एक ऐसा देश है जहाँ धारमा-परमात्मा स्वर्ग-नरक पुण्य-पाप व धर्म-कर्म की बातें अधिक होती हैं और वहाँ के निवासी ही नैतिकता से अधिक कोरे पाये जाते हैं । उत्तर भी स्पष्ट है । धर्म धर्म व्यवहार की छोड़कर दर्शन के क्षेत्र में प्रतिपद्य प्रवेश पा जाता है जब ये सारी समस्याएँ खड़ी हो सकती हैं । फिर भारतवर्ष का धर्म्य देश का कोई विशेष प्रयत्न ही नहीं रह जाता । दृष्टात पदसु इसका यह भी है कि धर्म को धर्म केवल उपासना में ही सीमित कर दिया जाता है तो उपरोक्त प्रश्न सच ही उत्तर जाता है । यह उसके

लिए उपासना और जीवन के प्रत्येक पहलू का समन्वय होना आवश्यक है। इसके साथ यह पहलू भी नहीं भुलाया जा सकता कि धर्मानुष्ठान व्यक्ति चौबीस घण्टे में केवल एक या दो घण्टे ही करता है। शेष बाईस या तेईस घण्टे तो दुनियादारी में ही बीतते हैं। आज की दुनियादारी भी किस तरह की धिनीनी है, यह किसी से छिपा नहीं है। व्यक्ति अपने में धार्मिक सम्बल जुटाता है, पर वह कुछ एक ही कदम आगे चल पाता है और दुनियादारी की फिसलन उसे अपने सकल्प से इतस्तत कर देती है। सामाजिक व व्यापारिक तथा अन्य परिस्थितियां बहुत बार नैतिक सकल्प लेकर चलने वाले व्यक्ति को भी इस तरह बाधित कर देती हैं कि सकल्प तोड़ने या आजीविका के उस क्षेत्र से सदा के लिये हट जाने के अतिरिक्त और कोई दूसरा मार्ग उसके समक्ष रह ही नहीं जाता। आजीविका के साधन स्वरूप उस क्षेत्र से वह हटने के लिये इसलिय तैयार नहीं होता कि उममें उसका मारा भविष्य अन्धकार पूर्ण दिखलाई देने लगता है। अतः वह भी इसी निर्णय पर पट्ट चता है कि जैसे सब, वैसा मैं। सबका भला तो मेरा भला और सबका बुरा तो मेरा भी। इससे वह अपने सकल्प से विचलित हो उठता है, किन्तु कुछ एक व्यक्ति ऐसे भी होते हैं, जो अपने दृढ विश्वास के आधार पर समाज-व्यवस्था व चालू परम्पराओं को भी बदलने की क्षमता रखते हैं। यदि ऐसा न होता तो समाज की धूरी स्थिर भी नहीं रह पाती और मनुष्य नीचे किस सतह पर पट्ट च गया होता, यह भी कल्पना नहीं की जा सकती। आज भी यदि मनुष्य मनुष्य के नाम से ही पुकारा जाता है तो उसका कारण भी यही है कि उसमें पशुत्व अधिक मात्रा में नहीं है। अहिंसा के आधार पर यदि वह अपनी समस्याओं का समाधान चाहता है तो उसका विश्वास अभी तक उसी पर स्थिर है और इससे यही संकेत मिलता है कि उपदेशों का मूर्तस्वरूप विद्यमान है। भारत में आत्मा-परमात्मा, पुण्य-पाप, स्वर्ग-नरक आदि की बातें अधिक होती रही हैं। इसी का ही तो परिमाण है कि भारतवासी अपनी बड़ी से बड़ी समस्या के समाधान में भी आध्यात्मिक पद्धतियों का अवलम्बन करना ही अच्छा समझते हैं। स्वराज्य जैसी विकट पहेली भी यदि अहिंसा के आधार पर हल की जा सकती है तो यह कभी भी नहीं माना जा सकता कि भारतीय नैतिकता के माने में अभी तक कोरे ही हैं। प्रत्येक देश के अपने-अपने नैतिक

मानव संस्कृतिवा है। भारतवर्ष भी अपने अपनी एक नैतिक संस्कृति रखता है। दूसरे देशों की परिभाषा और भारतवर्ष की परिभाषा में अत्यन्त भिन्नता है और वह भिन्नता ही यह अविश्वस्य करती है कि जीवन में आध्यात्मिकता का ही सर्वोपरि मान होना चाहिए।

अणुव्रत : भारतीय संस्कृति का प्रतीक

बहुधा लोग कहा करते हैं कि अब वह युग आ गया है जब कि पशु मानव बनने लगेंगे। पर आज तो मानव भी मानव कहा रहा है। न जाने उनकी मानवता कहा चली गई है। केवल मानव का चोगा पहनन मात्र न कोई मानव तो नहीं बन जाता। अणुव्रत-आन्दोलन का यही काम है कि खोई हुई मानवता वापिस लाई जाए। व क्या मानव बनाये जा न्वय चरित्र-द्रष्ट है, जिनके जीवन में सयम का नाम भी नहीं है। अणुव्रत-आन्दोलन तो चरित्र, सयम और त्याग पर टिका हुआ है। वह आज के मशीन युग में मानव को सही रूप में मानव बनाने की मशीन है। जो अणुव्रत के नहीं डांचे में टल जाता है, वह तो सही मानव बन ही जाता है।

कई लोग कहते हैं कि अणुव्रत-आन्दोलन तो देश व समाज का शक्ति-शाली बनाने का आन्दोलन है। पर मेरी कामना तो इसमें भी आते है। आन्दोलन का लक्ष्य समाज को शक्तिशाली बनाने की अपक्षा व्यक्ति-व्यक्ति की आत्मा को शक्तिशाली बनाने का है। समाज तो फिर अपने आप शक्ति-शाली बनेगा।

कुछ लोगों का यह भी कहना है कि अब जगली लोगों को ही उपदेश देना चाहिए। बात बिल्कुल ठीक है। पर मैं कहूँगा कि जगलीपन जगल में रहने मात्र से नहीं होता। वह तो आज जगलो से अधिक शहरों में पाया जाता है। जगलीपन यही तो है कि नाकुछ-सी बात पर मार-पीट होती रहती है। एक व्यक्ति का दूसरे व्यक्ति द्वारा पराभव होता रहता है। पर क्या आज के शहरी लोगों के बीच इस प्रकार का व्यवहार नहीं होता है। दूसरों के अधिकारों को हड़पना, विश्वासघात व शोषण करना, एक दूसरे की आजीविका छीन लेना, किसी का दमन कर देना, बिना किसी अपराध के सहस्रो मनुष्यों का एक साथ सहार कर देना, क्या जगलीपन नहीं है ?

इसलिए मैं समझता हूँ इस प्रवेदा से बहुरों और बबलो में कुछ भी अन्तर नहीं रह गया है। सहरी मनुष्य को उपदेश की इसलिए भी अधिक ध्यान देकर है कि जमसी लोगो से तो केवल कुछ एक प्राणियों का ही ग्रहित होता है किन्तु सहरी मनुष्य के इस तथाकथित जननीयता से तो मानव सृष्टि के ही विनाश की प्रतिभवा धारणका बनी रहती है।

सारा संसार मुझ के नाम मात्र से भयभीत होता है। मित्र पर ब्रिटेन और फ्रंस के मुझ का नाम सुनते ही संसार में धार्तक का घणा। भारो तरफ से शान्ति की माशाध माने लयी। कोय कहते है कि उस की बमकी से बिस्व-मुझ एक घना पर मैं तो ऐसा नहीं मानता। बहा हिंसा की शक्ति सीख ही गई थी। हिंसा से एक बार उपरन घावा का और बह परिस्थितिको की प्रति मुक्तता से टम्बा पड़ गया। श्रेय चाहे बिसे वे बिमा बाण पर बिजय प्राप्तिर पहिसा की हुई।

धगुदत धान्दोसन एक नैतिक धान्दोसन है और यह मुझ भारतीय संस्कृति पर धान्दोसन है। यह प्रत्येक ब्यक्ति की धात्मा को धान्दोसाली बनाना चाहता है और बहा कही भी जननीयता है उसे समाप्त कर बिबुद्ध मानवता का प्रतिष्ठान करना चाहता है। ब्यक्ति को बह मूलभूत इकाई मानता है और धान्दोसन धनी उपकरणो को उसके छहयोवी इकाइयो को मुदधित व बिबुद्ध रख कर ही बह बिकास को बिकास मानता है। इसके धान्दोसन से बिकास कहने मात्र का बिकास है यह इसकी मुबुद्ध मान्यता है।

[नवम्बर १९३६ के एक प्रबन्ध के आचार पर]

अणुव्रत : एक दिशा-सूचक ग्रंथ

जो प्रमादी है, उसको नव तरह में भय होता है। उसके चारों ओर विपत्ति के बादल मडराए रहते हैं। जो अप्रमत्त है अप्रमादी है उसे भय नहीं होता चाहे उसके सामने भयकर से भयकर शक्ति भी क्यों न हो ? वह हर समय उसका नामना करने के लिए तत्पर रहता है।

आज आम जनता को और विशेषतः पूजापूजा को बहुत भय है। वे सोचते हैं कि आन वाले युग में हमारा धन, ऐश्वर्य और प्रभाव कैसे नृश्रित रह सकेगा ? उन्हें धन कमाने की उत्तनी चिन्ता नहीं, जितनी कि उमरी रत्ना की है। उन्हीं भय के कारण वे चुनाव लड़ते हैं या अपनी ओर से चुनाव का चुनाव लड़ने में सहयोग देते हैं, ताकि समय-समय पर उनके द्वारा नर्माश्रित विचार देश की प्रतिनिधि सभा में आ सकें व सरकार को भी उस ओर मार्ग के लिए बाधित हो जाना पड़े। किसी भी प्रकार उनका वह धन, बड़ी-बड़ी श्रृष्टालिकाएँ व मुख मुविवाण ज्यों की त्यों सुरक्षित रह जाए। पर आखिर सबको ही समाज के अन्दर रहना है। समाज के बिना किसी का काम नहीं चलता, अतः हर एक को व्यक्तिगत चिन्ता न कर सामूहिक चिन्ता करनी चाहिए। मनुष्य आज क्या गरीबों का बून बूनना है और क्यों मानवता को कलकित करता है। आखिर उसे खाने के लिए रोटी, पहनने के लिए कपड़ा और रहने के लिए मकान चाहिए, वे तो पशु-पक्षियों को भी मिलते हैं। अब वह जमाना चला गया, जबकि बड़ी-बड़ी गोदामे अन्न से भरी रहती थी और गरीब भूखों मरते थे, तिरजोरिया धन से भरी रहती थी और गरीब पैसे-पैसे क लिए तड़फते थे।

जिस प्रकार समुद्र और आकाश में चलने वाले जहाज और वायुयान को निर्दिष्ट स्थान पर सफुगल पहुँचने के लिए दिशा-सूचक यंत्र की आवश्यकता रहती है, उसी प्रकार इस वेदगी दुनिया में जहाँ चारों ओर वैश्वमानी और

वैद्यनियत के बाधन मद्धा रहे हैं मनुष्य को सुख और शान्ति की अपनी इच्छित मजिल प्राप्त करने के लिए एक नैतिक शिक्षा-सूचक ग्रंथ की आवश्यकता है। अणुवत-आन्दोलन इसी प्रकार का एक शिक्षा-सूचक ग्रंथ है।

मेहरू की विदेशनीति जिसे आज सारा विश्व एक नजर से निहार रहा है, वहा जसी देश के वासी आपसी ऋणों और साम्प्रदायिकता को उभारने में मने रहे यह कितनी बुरी बात है। यही बात आज अणुवत आन्दोलन की हो रही है। वहा इस आन्दोलन को समझने और फँसाने के लिए अनेतर सोम और विदेशी लोक धनचक्र प्रयत्न कर रहे हैं। वहा अने ने अभी तक इस समझ भी नहीं है।

अणुवत-आन्दोलन और कुछ नहीं चाहता वह तो कबल दृष्टि में परिवर्तन माना चाहता है जीवन की शिक्षा में एक नया मोड़ बनाना चाहता है। जीवन दृष्टि के अनुसार वह तो वह मिथ्यादृष्टि (विपरीत-दृष्टिकोण) से धर्मिक दृष्टि बनाना चाहता है। धर्म दृष्टि में परिवर्तन हुआ तो बुरे कार्यों से मन में शान्ति होती और शान्ति से वह कार्य भी कूट जाएगा। अणुवत-आन्दोलन यही करना चाहता है।

[२१ अक्टूबर १९३६ को अगवाल्पुर (राजस्थान) में अणुवत प्रस्ताव समारोह में प्रवक्त प्रवचन]

समाज-परिवर्तन का आधार

जब मे समाज का विकाम हुआ, तब से समय-समय पर ये प्रश्न भी उठते रहे हैं कि वह किम रूप मे रहे ? उमम रहन वाले व्यक्तियों का जीवन कैसा हो ? सामाजिक व्यक्तियों का पारस्परिक व्यवहार कैसा हो ? और सामाजिक जीवन का मन्तोपप्रद सन्तुलन कैसे स्थापित हो ? समय समय के विशिष्ट महापुरुषों ने अपने अपने अनुभवों के आधार पर इन प्रश्नों का समाधान दिया है और समाज को सदैव गतिशील रहने की दिशा प्रदान की है । आज सभ्यता का काल है । चारों ओर नाना मस्कृतियों नाना सभ्यताओं व नाना वादों का एक तुमुल-सा हो रहा है । राजनैतिक व सामाजिक स्थितियों मे एक अस्थिरता सी प्रतीत हो रही है । विभिन्न वर्गों, पक्षों और विचारों मे विश्वास रखने वाले व्यक्ति जन-समूह को अपनी ओर आकृष्ट करने के लिए प्रयत्नशील है । सबके पीछे प्रलोभनों की एक लम्बी शृंखला-सी जुड़ी हुई है । ऐमे वातावरण मे मानव की विचार-शक्ति मन्तुलिन नहीं रह सकती । उममे इतना सामर्थ्य भी नहीं रह गया है कि वह ठण्डे दिमाग मे मोच व जीवन-पथ के लिए किसी दिशा का अनुगमन कर सके । ऐसी स्थिति मे मे समझता हूँ समाज-परिवर्तन की दिशा क्या हो, विचारकों के लिए यह एक विचारणीय विषय बन जाता है ।

समाज मे जो रुढ़िया, अनैतिकताएँ और पापाचार घुम गए है उन सब से समाज की सुरक्षा करने के लिए व उनमे परिवर्तन करने के लिए भिन्न-भिन्न मन्तिष्क नाना दिशाएँ सोच रहे हैं । कुछ तो सामज मे परिवर्तन लाने के लिए ऐसा धक्का लगाना चाहते है कि एक साथ सारा परिवर्तन हो जाए । मेरी समझ मे तो इसका मतलब यही आता है कि इस प्रकार एक साथ धक्का लगाने से समाज गिर पड़ेगा और उसका ध्वन हो जाएगा । मेरी धारणा इससे भिन्न है । यह मेरी समझ मे नहीं आता कि व्यक्ति को बदले बिना

समाज बदल जाएगा। मान लोय समाज में परिवर्तन चाहते हैं पर वे समाज की रीढ़—व्यक्ति की ओर नहीं देखते जिसका कि सामूहिक रूप ही समाज है। समाज में परिवर्तन साने वालों को सबसे पहले व्यक्ति को देखना चाहिए। जब तक व्यक्ति में परिवर्तन नहीं आएगा तब तक समाज में परिवर्तन आयाए यह किसी प्रकार भी संभव नहीं लगता। मान भी लें कि किसी तरह समाज में एक साथ परिवर्तन आ भी जाए तो भी ऐसा परिवर्तन कभी निरस्वामी नहीं बन सकेगा। कतिपय इ देशानु का प्रयोग रोग को बढाकर बीम ही प्राप्ति देने वाला होता है और जडी-बूटी का प्रयोग बहुत देर से। किन्तु इस्तेस्वामा द्वारा रका हुआ रोग प्रागे चलकर पुन संभव पडता है और बहुत सारी नई खराबियां भी उत्पन्न कर देता है। जडी-बूटी के द्वारा मिटाया गया रोग बीरे-बीरे आन्त हो जाता है और शरीर को पूर्णतः स्वस्थ बना देता है। रोगों के परिणाम भिन्न-भिन्न होते हैं। पहले में जहाँ बुष्परिणाम की कल्पना खुडी हुई है वहाँ दूसरे में सुपरिणाम के आसार नजर आते हैं। यही बात उठाए समाज-परिवर्तन और व्यक्ति-व्यक्ति के माध्यम से समाज परिवर्तन की प्रक्रिया पर लागू होता है। व्यक्ति-परिवर्तन के माध्यम से किया गया समाज परिवर्तन निरस्वामी होगा और व्यक्ति-परिवर्तन की उपेक्षा कर किना गया समाज-परिवर्तन बने हुए रोग की तरह सभिय में अनेक समस्याओं का उत्पादक बनेगा। अतएव व्यक्ति के सुखरे बिना समाज सुखरने की कल्पना नहीं की जा सकती।

उपर्युक्त मस्तव्य में विश्वास न रखने वालों की ओर से सबसे बडी नही आडका उपस्थित होती है कि ऐसे एक एक व्यक्ति को बदलकर कोणि-कोटि व्यक्तियों को कब तक बदल देंगे? वहाँ हम अधिक समाज-परिवर्तन का स्वप्न अपनी आँखों के सामने साकार हुआ ऐसता चाहते हैं वहाँ ऐसा मानकर चलने से कैसे कब और कितनी पीडियों के बाद वह प्रयोग संभव बनेगा? इसका समाधान इस प्रकार खोजना चाहिए कि किसी भी काय के प्रारम्भ में ही जडी-जडी विपत्तियां आयाए और कठिनाइयां बडी होती हैं। जितने अवशेष प्रारम्भ में छोडे होते हैं उतने प्रागे नहीं रहते। फिर तो कर्मसं सुविधाए बढती जाती है। प्रारम्भिक स्थिति को बँदे से पार करने पर प्रागे वा पक्ष सरलता से पार किना जा सकता है। कठिनाता से भी यदि एक व्यक्ति

समाज परिवर्तन का आधार

बदल गया तो निम्न कार्य को एक व्यक्ति करना था, उसके बाद उसी कार्य को करने के लिए दो व्यक्ति हो गए। इस तरह क्रमशः दा न चा और चा न बढ़ते-बढ़ते थोड़े ही समय में हजार व्यक्तियों को आमानी में बदलना और याजित किया जा सकता है। निम्न कार्य का प्रारम्भ में एक व्यक्ति जितने समय में करता है, अब उतन समय में हजार व्यक्ति एक मात्र उस कार्य को करेंगे। इस तरह यह कार्य पद्धति दिन-प्रतिदिन अपनी शक्ति को सुनगठित बनानी हुई क्रमशः बहुत कम समय में मात्र समाज का आमूल-चूल बदल सकती है। अतः परिवर्तन की मूलभूति व्यक्ति का परिवर्तन है। व्यक्ति का पडोस पर, पडोस का समाज पर, समाज का राष्ट्र पर और राष्ट्र का विश्व पर असर पड़े बिना कभी नहीं होगा। नए व्यक्ति व्यापी परिवर्तन अपने आप पडोसव्यापी बनकर आगे बढ़ता हुआ अपनी अनाधारण क्षमता का परिचय प्रस्तुत करेगा।

समाज में आनंद दो विरोधी दिशाएँ चल रही हैं। नया स्वयं निरिद्धि का प्रसंग आता है, वहाँ मनुष्य एकदम व्यक्तिवादी होता है। वह मानता है—मैं सुखी बनूँ, मुझे धन और सुविधाएँ मिलें, मेरी प्रतिष्ठा हो। इस बीच पारिवारिक, पडोसी, समाज या देश के अन्य व्यक्ति चाहे पुत्र की तरह पिये जाएँ, मेरे पर उनका कोई उत्तरदायित्व नहीं। इसके विपरीत नया सुधार का प्रश्न आता है, वहाँ मनुष्य व्यक्तिवादी नहीं रहता। वहाँ वह अपने आपने सुधार प्रारम्भ करना नहीं चाहता। वह चाहता है पहले देश सुधरे, समाज सुधरे और मेरी बारी सबसे पीछे आए। यदि वहाँ वह व्यक्तिवादी बने, अपने आप को सुधारें तो औरों को भी सुधार की दिशा दे सकता है। आनंद व्यक्ति का आत्मवल विकसित नहीं है, अतः उसमें जागृत उपदेश टिकने नहीं है। आत्मवल विकसित हो, इसलिए बुरी वृत्तियों का त्याग किया जाना चाहिए। अहिंसा को प्रथम देकर व्यक्ति 'तू' और 'मैं' के भेद का भूल जाए। यदि समता, मैत्री और एकत्व की भावना बढ़ेगी तो व्यक्ति, समाज और राष्ट्र सभी सुधर जायेंगे, उसी भावना को लेकर व्यक्ति आगे बढ़े।

मंगठन के मूल सूत्र

चरित्र बल

मह एक सही तथ्य है कि युवक यदि चाहें तो बहुत काम कर सकते हैं और इसके विपरीत यदि वे न चाहें (अर्थात् सहयोग से हाथ खींचें) तो कोई भी कार्य नहीं बन सकता। इस बात के उदाहरणों की भी कोई कमी नहीं है। प्रत्येक व्यक्ति युवकों के सहयोग व असहयोग पर ही सफल व असफल होती रही है। बुद्धों का प्रपत्ता उत्तरदायित्व रहता है किन्तु कार्य युवक ही किया करते हैं।

युवकों में जिस प्रकार शरीर-बल है उसी प्रकार यदि उनमें चरित्र-बल भी हो तो सबकुछ टिक सकता है। बिना चरित्र बल के कोई भी संस्था प्रभिक दिनों तक चल नहीं सकती। संवत्स का प्रचार चरित्र हीना चाहिए, यह मेरा निश्चित मन है। बड़ा चरित्र ही प्रसमानता होगी बड़ा एफना हो ही सके सकती है ? जिस संस्था में जितने प्रभिक चरित्रवान् एव निस्वार्थ व्यक्ति होंगे वह संस्था उतनी ही प्रभिक सुखीय और बीर्वायु हो । सम्पत्ता स्वार्थी के संघर्ष में संवत्स कमी जिस कर मर जायेगा।

बुद्धता

युवकों से मेरा बहुत सम्पर्क रहा है। प्रथम मैं उन्हें प्रणवी तरह पहचानता हूँ। कई युवकों में तूफानी बोध भावा कपता है और उस समय न जाने वे क्या क्या प्रान्धीनाएँ व कल्पनाएँ बना जासके हैं। वो कल्पन चलने पर उनका बोध ठंडा पड़ जाता है और वे विचित्र होकर बैठ जाते हैं। ऐसे युवकों से कुछ होने जाने का नहीं।

दूसरे प्रकार के युवकों में अंधि पाती है लेकिन वे स्वामी रूप में धीरे धीरे काम करते हैं। वे एक साथ खोरगुल नहीं मचाते। अपनी शक्ति और स्थिति को प्रणवी तरह देखकर काम करते रहते हैं। ऐसे युवक प्रवृत्तोगरता बहूना सफल होते भी देखे जाते हैं।

चरित्र-शुद्धि

चरित्र न तो किमी दूसरी जगह में आता है और न खरीदा ही जा सकता है। वह अपने आप में ही है और स्वयं ही उसका विकास किया जा सकता है। सम्पर्क से प्रेरणा अवश्य मिल सकती है। वह सम्पर्क चरित्रवान् पुरुष का ही होना चाहिए। चरित्रवान् के सम्पर्क में रहने से चरित्र की शुद्धि हो सकती है। साधुओं से बढ़कर और कौन अधिक चरित्रवान् हो सकता है अतः यदि किमी को अपना चरित्र समुन्नत करना है तो साधुओं का अधिकाधिक सम्पर्क होना चाहिए।

चरित्र-शुद्धि का तात्पर्य है, सर्वथा अहिंसक बन जाना। पर यदि कोई मवथा अहिंसक न बन सके तो कम से कम निरर्थक हिंसा को तो छोड़े। पूर्ण ब्रह्मचारी न बन सके तो अमर्यादित व्यभिचार का तो परित्याग करे। इस प्रकार सदृश आचार से सगठन की नींव जम जाती है। सारे शक्ति कलौ युगे—इस कहावत के अनुसार सगठन में बहुत बड़ आ जाता है और उसके प्रभाव से बड़े बड़े कठिन कार्य भी सरल बन जाते हैं।

एकतन्त्र

प्रश्न सामने आता है कि सगठन का संचालन कैसे हो ? इस विषय में मरा तो स्पष्ट मन है कि एकतन्त्रीय सगठन ही सबसे अधिक सफल हो सकता है। जहाँ जनतन्त्र है वहाँ भी वास्तव में एकतन्त्र ही रहता है। प्रमुख रूप से वहाँ भी कोई न कोई एक ही नेता या पदाधिकारी होता है। यदि सारे ही नेता बन जाएँ और अपने-अपने राग आलापने लगेँ तो उम सस्था का चलना मुश्किल हो जाएगा। नीतिकारों ने कहा भी है —

बहुवो यत्र नेतार सर्वे पण्डितमानिन ।

सर्वे महत्वमिच्छन्ति तद्वन्दमवसीदति ॥

और भी कहा गया है —

नहि पति, बहु पति, निबल पति,

पति कुमार, पति नाथ ।

और पुरन की कहा चली

सुरपुर होत उजाड़ ॥

इस विषय में उत्प्रेक्षणीय उदाहरणों के साथ-साथ का मिमा का सकता है। वही एक गुरु का ही आदेश बनता है। गुरु के अनुशासन में सारे साधु-साध्वियों रहते हैं। सभी साधुओं को अपनी-अपनी योग्यता बढ़ाने का पूर्ण अवकाश मिलता है। अपने प्रतिभा-बल से उच्चकोटि के विचार-विद्वान् व साधक हो जाते हैं। संन्यस की सीमा में फिर भी वे महान् गुरु को ही होने अपने अपने विचारों का आग्रह नहीं करते। अष्टमाचार्य की कानुमयी दिशा बिया करते हैं कि साधु-साध्वियाँ सब में अधिक से अधिक योग्य बनें पर संन्यस का आचार कुछ ही मात्रा ही हो। एकतरफ़ीय प्रणाली रहेगी तब ही सब सुचारु रूप से चल सकेगा। संन्यस में अपने आपका महत्त्व नहीं दिखाना चाहिए अपने अहं को बाधना होता है। बहो कोई यह नहीं कहेगा कि मैं बड़ा हूँ। सभी का एक ही तारा होना कि तुम बड़ हो। क्याही अपने आपको अधिक महत्त्व देने की भावना सभी स्वोही पूरे पक्षे बिना न रहेगी क्योंकि अहं कृति से म्याय नहीं बंधा जाता। बहो तो यही सोचता है कि किसी भी प्रकार से मेरा अहं सुरक्षित रहे। उसके लिए जैसे ही साधन उपलब्ध होंगे अहंभावी मनुष्य उनके प्रयोग करने में सभी सन्तान नहीं बरेगा। इससे बुराई में असन्तोष पैदा होगा और उस असन्तोष की भावना से मनमुटाव बड़ेगा। अन्ततः सब अस्मयस्वित्त हो जाएगा।

स्वाध्यायिता

यह भी आवश्यक है कि सब के निबन्धा नि स्वार्थ हो। यदि उनमें स्वार्थ का गया तो न तो उनका महत्त्व ही रहेगा और न संन्यस ही। इसलिए एक-तरफ़ीय साधन में नि-स्वार्थ सेवा का होना सबसे अधिक आवश्यक है। उन्हें प्रत्येक आदेश देते समय यह विचार रखना होता कि इसमें किसी व्यक्ति विशेष का स्वार्थ न रहकर सारे सब का कल्याण हो। इस प्रकार उनमें व्यक्ति की विशेष महत्त्व न देकर सब को अधिक महत्त्व मिलेगा। जिससे सभीय भावना विशेष और पकड़ेवी और संन्यस असूना रूप से चलता रहेगा। अमर संन्यास में बचना या जाएगी तो र्थवा में बड़को वाली कहावत सिद्ध हो जाती है। कई-कई पक्ष ठेठे होते हैं जो नीचे की छरकाते हैं। सारा काम उस ही जाने पर भी आसिर में है एक ऐसी बात यह है कि जिससे सारे किए हुए निर्वाहों पर वाली फिर जाता है। काम निपट नहीं पठा और ऊपर से वे

कहते हैं—अरे यह मारा काम कैसे बिाड गया ? तेसे सचालता मे गप कभी नही चल सकता, उन्हें तो बित्कुल सरल और निस्वाय होना चाहिए ।

योग्य मार्ग-दर्शन

युवको मे यदि सगठन की सच्ची तडफ है तो उन्हे युवको और वुजुर्गों के बीच वाली खाई को पाट देना चाहिए । मेन प्राय यह दत्ता है कि युवक-दिमाग और वुजुर्ग-दिमाग आपस मे मिलते नही है । युवका मे नया खून होता है, अत उनका दिमाग न जाने किस तेजी से बढना चाहता है ? किन्तु यह निश्चित है कि इस प्रकार युवक सफल नही हो सकेंगे । वुजुर्ग नागा के सामने मे जमाना गुजरा हुआ होता है, अत उससे उन्हे बहुत मे अनुभव मिल गए होते है, पर उनकी शारीरिक शक्ति क्षीण हुई होती है । युवको मे शारीरिक शक्ति होती है, पर वे अनुभवी कम होत है, अत वे पुन पुन स्थलित हो जाते है । युवक वुजुर्गों के अनुभवो से लाभ उठाकर ही आगे बढ सकते है । युवको और वुड्डो का सहयोग अन्वे और पगु का सा है । अन्धा देख नही सकता पगु चल नही सकता । पर यदि अन्धा अपन कन्धो पर पगु को बिठाले तो दोनो की गाढी ठीक प्रकार मे चल सकती है । पगु स्वय बँट नही, पर अन्धा स्वय अपने कन्धो पर उमे बिठाले, तब ही काम चल सकता है । अत युवक वुड्डो के अनुभवो का लाभ उठाकर अगर वुड्डो और युवका के बीच की खाई को पाट कर आगे बढेंगे तो सगठन के कार्य मे सफलता मिलना पूर्णत सम्भव है ।

अर्थ समस्याओं का समाधान नहीं

आज देश में आचार की बहुत अधिक आवश्यकता है। इसके बिना देश बरिख है। पैसा नहीं होने से ही कोई बरिख नहीं हो जाता। वास्तव में तो बरिखला समाचार ही है। यदि पैसा नहीं होने से ही कोई बरिख हो जाय तो सब से बड़ बरिख तो साबु होत। पर उनक सामने तो सभाओं के भी सर झुक जात है। अतः वे बरिख कैसे / आज मनुष्य का मुखाम्तन पैसे से हो रहा है यह उचित नहीं है। मनुष्य सही स्थिति में सोचे। तो उसे बह समस्या में आ जायेगा कि वह उसने बड़ी भारी भूल की है पर आज कहा किसे जाये ? आज तो सभी यह सोचते हैं कि पैसा बड़ा है। एक रामसभा की बात है। एक बार उसके सारे सदस्यों ने शराब पी भी। सारे ही सदस्य नष्ट में झुमने लगे। केवल मंत्री और राजा बो ही ऐसे थे जो उस समय नष्ट में नहीं थे। दोनों ने ही सदस्यों को बहुत समझावर पर नष्ट की हानत में उन पर क्या धमक पड़ने बाबा बा ? उन्हें वे लोग नष्ट में अधिक पागल होत यमें और और और से लाने व जाने लगे। नष्ट का बेव अह तक बड़ गया कि उन्होंने अपने कपड़ भी उतार दिये और लाचले-कूचले राजा तथा मन्त्री की घोर बीड़े। बीलों ने उन्हें फिर समझाया पर अंतर उस्ता ही हुआ। उन्होंने सोचा अब और नहीं है। यदि और उपदेश दिया जायेगा तो जान पर आ बनेगी। उन्होंने भी कपड़े उतार दिये और उनके साथ ही लाचले-गाले लगे। आज भी ऐसी ही स्थिति है। सारे लोग पैसे के पीछ पागल से बीड़ रहे हैं। कुछ लोग उन्हें समझाते भी हैं पर उनकी कोई सुनता नहीं। अस्ते कई लोग तो उन्हें अतिकृतनाभी तक कह बैठे हैं पर समझावर लोग इस बहुमल के भी चक्कर में पड़ने लगे नहीं हैं। उन्हें सत्य पर विस्वात है। आखिर भसा उतरने पर संसार को इसी तथ्य पर आना पड़ेगा इसमें कोई सन्देह नहीं।

अथ में अनेक समस्याएँ पनपती हैं। यह सब प्रत्यक्ष है। जिमकी जड़ ही समस्या है, उसमें से समाधान कहाँ न आयेगा? किसी समय एक बाबा हमने-फिरते-मानव्यन के जंगल में गड गये। उन्हें बड़े जाग से भूख लगी। वहाँ खान को क्या मिलता? आदिर दूध-दूधते उन्हें एक तुम्ब की बल नजर आई। उस पर फल देखकर उन्होंने सोचा, सम्भवतः यह खाने का ही फल है। भूख तो ये ही। भट फल तोड़ लिया और खाने लग। पर एक टुकड़ा मुँह में रखते ही मुँह खाल हो गया। उन्होंने सोचा फल खारा है, शायद पत्तों मीठ होंगे, अतः पत्तों तोड़ कर खाये। वे और भी खाये। दहनी तोड़ कर मुँह में डाली, पर वह भी कम खागी नहीं थी। अन्त में उन्होंने उन बल को उखाड़ कर उसकी जड़ का छोड़ा सा चन्दा पर उमन तो सबको ही मानकर दिया। वह तो हलाहल ही थी। उनकी समझ में आया कि जिमकी जड़ ही खानी है, उसकी दहनी, पत्तों और फल मीठ कहाँ न होगा। उसी प्रकार अथ स्वयं यदि समस्या है तो उसमें से समाधान कैसे आयेगा। अतः आज नहीं तो कल, अन्त में मनार को अपना दृष्टिकोण बदलना पड़ेगा कि अथ में समस्याओं का हल नहीं है। समस्याओं का हल समय में ही होगा—आचार में ही होगा।

सब धर्मों का नवनीत

अनुष्ठान-धार्मिक जीवन की मूल विधि को सुदृढ़ बनाना चाहता है। पारस्परिक द्रोह और असहभावना के स्तर पर प्रेम भ्रातृत्व और सम्भावना का संचार कर जीवन में एक नई शक्ति भरना चाहता है। इसका अनुक्रमण करने वाला स्वयं धार्यवृष्टि के मधुर रस का आस्वादन करेगा। सबसे पहले काम उसे स्वयं है इसलिए इन धार्यों को अपमाना किरी पर कोई एहसास नहीं है। वह तो व्यक्ति-व्यक्ति का अपना काम है जिसे करते पर उनको स्वयं लाभ मिलेगा। यह व्यक्ति के वैयक्तिक व्यवहार को परिमार्जित और परिष्कृत करने का एक श्रेष्ठ साधन है। मानव का वैयक्तिक व्यवहार सात्विकता युक्तता और निर्मलता लिये हुए हो वह जीवन की पहली शक्ति है। वैयक्तिक व्यवहार पर विशेष कदाग्रह धारि मान से गम्भा बना हो तो ऊँची ऊँची बातें बनाने से क्या लाभ? यह धर्म के उन मौखिक धर्मसम्मत धार्यों को लेकर चलता है जिसका प्रतिपादन व्यक्ति को धर्म की ऊँची धाराबना के योग्य बनाता है।

धार्मिक जीवन के प्रवर्तन में यह सम्यक् करना मूल होगी कि छोटे छोटे बातों का उपमन कर ऊँची उपस्था और धार्य साधना का निरोध किया गया है। ऊँची उपस्था व धार्य साधना से कौन किसको रोक सकता है? यह तो प्रचलता की ही बात है कि अनुभव अपने जीवन को बिताना न वा उनके धर्म और उपस्था की ऊँची धाराबना में नै बाए। अनुष्ठान-धार्मिक तो व्यक्ति को उस विधायक साधना के योग्य बनाता चाहता है।

अनुष्ठान-धार्मिक जीवन के धार्य काल से ही कठिनाइया भी सामने आने लगी। धर्मोपदेश इत एच्छ का कार्य करते हैं वे धर्म भी देने सुने। मैंने सोचा जो काम मैं कर रहा हूँ जो मार्ग देने लिया है वह अनुष्ठित

नहीं है, शुद्ध है, निर्दोष है, मुझे उम पर चनना चाहिए। मैं चला। विरोध को मैं लाभकारी समझता हूँ, क्योंकि वह व्यक्ति को जागरूक रखता है। मुझे इस में बड़ा आनन्द आता है। मुझे यह प्रकट करते हुए सन्तोष है कि अगुव्रत-आन्दोलन की जड़ें क्रमशः मजबूत होती जा रही हैं।

अगुव्रत-आन्दोलन सब धर्मों का नवनीत है। क्या कोई भी धर्म शील, सदाचार, शौच और मदभावना का विरोध करेगा? अगुव्रत आन्दोलन धर्म के इन ऊँचे आदर्शों को सरलता से हृदयगम कर जीवन व्यापी बनाना चाहता है। नई शिक्षण प्रणाली के अनुसार चलने वाले बाल-मन्दिरों में जैम बच्चों को बिना आयाम के हमते-खेलते शिक्षण दिया जाता है, उनको यह महसूस नहीं होने पाता कि हमने पढाई कराई जा रही है, उसी तरह अगुव्रत-आन्दोलन धर्म के ऊँचे तत्त्वों को जीवन व्यवहार में सरलता और सहज भाव में जोड़ना चाहता है कि वे भार रूप न रहें और व्यक्ति के जीवन का हर पक्ष सदाचार के बुनियादी नियमों में सम्बद्ध हो जाए।

[११ मार्च, १९५६ अजमेर (राजस्थान) में प्रदत्त प्रवचन के आधार पर]

अहिंसक समाज व्यवस्था

प्राण अत्यान्ति का बोध होता है अतः यह सोचना है कि इसका मूल कारण क्या है ? क्योंकि वैसे मूल में होगा वैसे ही ऊपर प्राणगा। अत्यान्ति प्राण ऊपर था रही है। अतः इसके मूल में कुछ है। अतः हमें मूल को ही खोजना है। जब तक उसे नहीं पकड़ा जाता तब तक अत्यान्ति मिट नहीं सकती। अत्यान्ति की जड़ है— हिंसा। जब में जब हिंसा है दुर्भावना है द्वेष है तब ऊपर अहिंसा सम्भावना और प्रेम कैसे था सकता है ? अतः अन्ति बाह्य अभिप्रेत है तो अहिंसा को अपनाया पड़ेन और इसीलिए अहिंसक समाज की कल्पना सामने आती है।

व्यक्ति और समाज

मन है कि अहिंसा का प्रयोग-स्वतन्त्र व्यक्ति ही है। यदि व्यक्ति अहिंसक बन सकता है तो समाज या राष्ट्र भी अहिंसक क्यों नहीं बन सकते। समाज और राष्ट्र आखिर व्यक्ति से प्रसंग तो कुछ है ही नहीं। अतः व्यक्ति को अहिंसक बनाने में साव-साव उसके व्यापक रूप समाज को भी अहिंसा की भावना से अनुप्राणित करना होगा। तब ही अत्यान्ति का मार्ग मिल सकेगा पर हमें अहिंसा की प्रतिरूपना में भी नहीं जाना है क्योंकि उससे कभी-कभी निराशा भी हो सकती है। सारा समाज अहिंसक बन जाए यह न तो कभी सम्भव हुआ है और न भाव है भी। यद्यपि समाज में द्वेष भय मोह, लोभ न रहे वह भावस्फुट है, पर जब तक अंधार में प्राणुरी रहेंगे तब तक उनका अर्थना उन्मूलन होगा असम्भव-सा ही है। इसीलिए कल्पना वैसी ही करनी चाहिए जो सम्भव हो।

दृष्टिकोण सही ही

हम यह मान कर चलते हैं कि प्रबल किया जाए तो कुछ प्राणुरी अहिंसक

वन सकते हैं। पर वह कुछ भी नाकृद्य जैसा ही है। सम्पूर्ण अहिंसक तो बहुत ही थोड़े लोग बन सकेंगे। अतः हम डम कल्पना को भी छोड़ दें। मरने पहले जन-जन के मन में जो अतिभोग, अतिपरिग्रह तथा अतिहिंसा के भाव आ गए हैं, उन्हें मिटाने का प्रयत्न करें।

आज जीवन का साध्य ही गलत हो गया है। अधिकतर लोगों ने भोग और परिग्रह का ही अपना साध्य मान लिया है। यह सच है कि हिंसा और परिग्रह के बिना गृहस्थ का जीवन चल नहीं सकता। ठीक उमी तरह जैसे बिना पट्टी के रज्ज नही चल सकता, पर यह माध्य नहीं हो सकता। अतः सबसे पहले अपने दृष्टिकोण को ठीक करने की आवश्यकता है।

एक भाई आया और कहन लगा—जीवन के लिए जो आवश्यक काय है, मैं उन्हें अहिंसा ही मानता हूँ। फिर उसने गीता का उदाहरण दिया। वहने लगा—गीता में श्रीकृष्ण ने अर्जुन को लड़ने के लिए प्रेरित किया है। वह यदि हिंसा हानी तो श्रीकृष्ण ऐसा कैसे कहते। मैंने कहा—है तो वह हिंसा ही। यह जरूर है कि वह हिंसा उस समय आवश्यक हो गई थी। उनके बिना वहाँ कोई दूसरा चारा नहीं था। अन्याय और दुष्टता को दवाने के लिए उन्होंने अर्जुन को युद्ध के लिए प्रेरित किया था। पर हिंसा अहिंसा कैसे हो सकती है? आज भी इसी प्रश्न को सब पहले लेना है। आज जीवन का लक्ष्य ही गलत हो गया है। लोग किसी प्रकार से रुपये कमाना ही अपना लक्ष्य मानने लगे हैं, पर यह गलत दृष्टिकोण है। इसे बदलना होगा। यही अहिंसक समाज-रचना का पहला कदम होगा।

अहिंसक समाज के चार मानदण्ड

वर्तमान अशान्ति की जड़ हिंसा में है। वह विविधमुखी होकर अनेक मार्गों से बाहर निकल आती है। उसका पहला कारण है—ममत्त्व, दूसरा कारण है—इच्छाओं का विस्तार, तीसरा कारण—साम्प्रदायिक आग्रह, चौथा—वहृष्ण की स्पर्धा।

यद्यपि इसके और भी अनेक कारण हैं, पर मैंने अभी चार कारण ही गिनाये हैं। ये चार कारण मिट जाते हैं तो अहिंसक समाज की परिकल्पना

स्वयं धामने या जाती है। इस दृष्टि से अधिसक समाज के भी चार मानक रखे—

पहला—सर्व प्राणियों में अघनत्व की भावना

दूसरा—इच्छा परिमाण

तीसरा—साम्प्रदायिक धनाग्रह

चौथा—अघनत्व की भावना का अन्त।

ये चार बातें यदि समाज में या जाती हैं तो समाज स्वयं अहिंसा के मार्ग पर चल पड़ेगा।

यद्यपि आरम्भ और परिणत को एक गृहस्थ सर्वथा नहीं छोड़ सकता वरन् वह महारम्भ और महापरिणत को तो छोड़े। गृहस्थ के पास यदि कुछ भी न रहे तो वह मुभी नहीं रह सकता और ग्याहा हो जाए तो भी सुखी नहीं रह सकता। उसका मार्ग मध्यम मात्र है। उसके पास कुछ ही यह भेटी भावा नहीं है। मेरा दृष्ट है—उसकी भावना अस्वात्स्म की ओर रहे उसमें सकोच और नियन्त्रण रहे इससे व्यक्ति भी अकृष्ट में नहीं जाता और समाज का काम भी चल जाता है। क्योंकि एक व्यक्ति महापरिणत की ओर मुड़ता है तो स्वभावतः अन्य व्यक्तियों का साक्षर्य तो होना ही। यदि एक व्यक्ति १ व्यक्तियों की रसोई अकेला समेट ले तो दोष व्यक्तियों को नूचा रहना ही पड़ेगा।

सम विभाय

तेरापच सब से वह विभाग है कि यदि १ प्याले पानी के घाए और १ साबु ही पानी पीने वाले हैं तो एक-एक साबु एक-एक प्याला पानी पीकर रह जाएँ। दूसरों के विभाय का पानी पीने का उर्रे कोई अधिकार नहीं है। यदि कोई साबु इस कानून का उल्लंघन करेता है तो उसे कड़ा प्रायश्चित्त जाता है। एक बार ऐसा ही हुआ। पानी कम मिला का और पीने वाले साबु अधिक थे अतः अघनत्व साबु ने आरोप दिया कि सब साबु पानी माप-माप कर पीये। एक साबु भाए और विभा वाले पानी पीने लगे। अघनत्व ने पूछा—पानी बिना मापे कैसे पीया ? उर्रे उर्रे दिया—प्यास लगी थी इसलिए। पर प्यास तो सभी को लगी थी मुझे अकेले ही साबु पानी कैसे पी दिया ?

उनसे कोई उत्तर देते नहीं बना और न ही उन्होंने अपना अपराध स्वीकार किया। फलतः उन्हें सघ से अलग कर दिया गया। इसी प्रकार एक व्यक्ति यदि महापरिग्रही होता है तो परोक्षतः वह दूसरो का शोपक तो हो ही जाता है। अतः अहिंसक समाज में महापरिग्रही व्यक्ति को स्थान नहीं मिल सकता।

सघर्ष का मूल

मजदूर चाहते हैं—हमें काम तो थोड़ा करना पड़े और वेतन अधिक मिल जाए। मिल मालिक चाहते हैं—मजदूरो से काम तो ज्यादा लिया जाए और वेतन कम दिया जाए। बोनस भी जहां तक बन सके, नहीं दिया जाए। यहां में पारस्परिक विरोध का सूत्रपात होता है, हड़तालें होती हैं। आखिर वैमनस्य बढ़ जाता है और दोनों को ही हानि उठानी पड़ती है। वे तो लड़ते हैं सो लड़ते हैं, पर देश का भी उससे भला नहीं होता है। जनता भी बीच में पिस जाती है। इस प्रकार लाभ किसी को नहीं होता और खाइयाँ और चौड़ी हो जाती हैं।

अहिंसक समाज का आधार

आज प्रत्येक व्यक्ति अधिक से अधिक परिग्रह के संग्रह में जुटा हुआ है। ऐसी परिस्थिति में अहिंसा की वृत्ति पनपे भी तो कैसे? वह तो तभी पनपेगी जब सुलस जैसी वृत्ति लोगों के हृदय में जगेगी। सुलस एक कसाई का पुत्र था। उसका पिता प्रतिदिन ५०० भैंसे मारा करता था। अतः उसका वचन अत्यन्त हिंसक प्रवृत्तियों में गुजरा, पर उसे हिंसा से बड़ी घृणा थी। वह किसी प्राणी का वध नहीं करना चाहता था। जब पिता मरणासन्न हुआ तो उसने सुलस को अपने पास बुलाया और कहने लगा—पुत्र! क्या तुम मेरी एक बात मानोगे? उसने उत्तर दिया—जहर। तो मेरी मृत्यु के बाद गृहपति का उत्तरदायित्व तुम्हें ही सम्भालना होगा। सुलस ने उसे सहष स्वीकार कर लिया।

पिता की मृत्यु के कुछ दिन बाद एक दिन सभी सगे सम्बन्धी एकत्रित हुए और उसे गृहपति का भार सम्भालने लगे। वहां एक विचित्र ही दृश्य उपस्थित हो गया। क्योंकि गृहपति का भार सम्भालने की रश्मि के अनुसार सुलस को एक भैंसे का वध करना आवश्यक था। पर वह ऐसा कर नहीं

सकता था। सम्बन्धियों ने उसे बहुत समझाया पर वह अपने मित्रत्व से बचती बिल्कुल नहीं हुआ। अन्ततः पिता की आज्ञा का प्रयत्न था। सम्बन्धी कहने लगे—तुम्हें पिता की आज्ञा का पालन करने के लिए प्राण कुपाय बनानी आवश्यक है। तुम उससे बच नहीं सकते। उसने उम्हें बहुत समझाया पर कोई उसकी बात मानने का ठेकार नहीं हुआ। बाकिर दुःख को एक उपाय सूझा। उसने पूछा—क्या आज मुझे कुपाय बतलाना आवश्यक ही है? सबने कहा—हां। उसने कुपाय अपने हाथ में भी और उसे अपने पैर पर ही मारने लगा। सभी भोय स्तम्भित हो गए और कहने लगे—यह क्या करते हो? उसने कहा—घाय ही तो कह रहे हैं कि आज मुझे कुपाय बतलाना आवश्यक है। अतः घायकी आज्ञा का पालन तो करना ही होगा। किसी दूसरे प्राणी को मैं मार नहीं सकता। इससे जितनी पीड़ा मुझे होती है उससे कम पीड़ा दूसरों को भी नहीं होगी। अतः दूसरों पर कुपाय बनाने की अपेक्षा मैं अपने पर ही उसका क्रमोपयोग करूँ? यह सुन सब लोग ठंडे बड़ गए और कहने लगे—तुम चाहे सो करो किन्तु अपने पर तो कुपाय मत बतलाओ। हम तुम्हें बिना कुपाय बतलाए ही गृहपति का पद देते हैं। और बिना किसी बच के उसे गृहपति का पद मिल गया।

यह है अहिंसक समाज की कल्पना का आधार। व्यक्ति-व्यक्ति यदि प्राण ऐसी वृत्ति अपनाएँ तो अपने प्राण अहिंसक समाज बन जाएगा। अति अहिंसा की बात हम जानें हैं। पर यदि कोई अनात्मिक हिंसा और दूसरों पर आक्रमण भी न करे, तो बहुत है। यही अणुवत् का मार्ग है। अणुवत् की भाँति ही यह है कि वह अपना मुँह लेना पर दूसरों को कुछ नहीं देगा। वह अपना पैर भरेगा पर दूसरों की छोटी नहीं छीनेगा। ऐसी परिस्थिति का जब निश्चित हो जाएगा तो स्वयं ही अहिंसा प्रधान समाज-जगत् का सामने आएगी।

आत्म-शक्ति को जगाइए

अगुव्रती कितने होते हैं ? उनकी सख्या कितनी बढ़ी जा रही है ? ये समाचार मेरी प्रमन्नता के कारण नहीं है। मैं प्रसन्न इस बात से हूँ कि जनता में समय का वातावरण बन रहा है। उनकी सख्या को भी मैं प्रदर्शन की दृष्टि से नहीं सुनता हूँ। पर मैं समझता हूँ कि इससे दूसरे लोगों के उत्साह में भी वृद्धि होती है। पिछले वर्ष जो अगुव्रती बने, अगर उनमें कोई कमजोरी आ गई है तो वे अपने आप में फिर से नया उत्साह भर सकें, जो कमजोर है वे अपनी कमजोरी को मिटा सकें और जो अभी तक अनुत्साह-शील है उनमें नया स्पन्दन हो नया उत्साह आए, यही अघिवेशन और अगुव्रतियों के नाम और जगह-जगह के उत्साहशील समाचार सुनाने का उद्देश्य रहता है।

इस अवसर पर मैं अगुव्रतियों से यह भी कहना चाहूँगा कि यदि अपनी आत्मा की उन्नति करनी है, जीवन को ऊँचा उठाना है, तो दर-दर भटकने की आवश्यकता नहीं है। अपनी उन्नति करने वाला कोई दूसरा नहीं है। उन्नति तो अन्तःकरण में सोई पड़ी है, उसे जगाने की आवश्यकता है। उन्नति बाहर से आने वाली नहीं है। यह अवश्य है कि प्रेरणा बाहर से अवश्य मिल सकती है। आप महाव्रतियों से प्रेरणा लीजिए, अगुव्रतियों से प्रेरणा लीजिए, अगुव्रत सहयोगियों से प्रेरणा लीजिए और अपनी सोई हुई आत्म-शक्ति को जगाइए। उन्नति अपने आप हो जाएगी।

एक जमाना था, जब सारे ससार में भारत की प्रतिष्ठा थी। अब वह प्रतिष्ठा उतनी नहीं रही है। इसे देख कर किसके हृदय में टीस नहीं उठती। मद्रावीर और बुद्ध के देश में, जहाँ पुण्य चरित्र की लौ एक-सी प्रज्वलित थी, उन्हीं के देशवासी आज चरित्र के लिए दूसरे देश के लोगों से माग करें,

सबसुख यह बुझ की बात है। इन्हीं से मेरे दिव्य में सर्व सुखा और उसी के अभावसे मैंने इस आम्बोमन को प्रारम्भ किया। केवल आम्बोमन लड़ा कर देने मात्र से क्या काम बन जाता है। काम तो तब ही होनेमा जब बैसबासी कुछ काम करेगी। अपने चरित्र को सुधारने की और शाने बढ़गे।

मन्ना जोरी न करने के लिए आम्बोमन की क्या आवश्यकता है? जोरी नहीं करने में मनुष्य को क्या कष्ट सहना पड़ता है? कष्ट तो तब सहना पड़ता है जब मनुष्य जोरी करे। जोरी करने वाले को जोरी करने से पहले और पीछे अपने बचाव के लिए अनेक कल्पनाएँ करनी पड़ती हैं। उनसे दुःख होता है। परन्तु जोरी नहीं करता उसकी नीद में नीन बाधक बन सकता है। वह व्यापारी को जोरबाजारी नहीं करता स्वप्न में भी इन्धवायरी से बेचैन नहीं होता। इन्धवायरी की विन्दा तो उसको है जो जोरबाजारी करता है। अतः मुझे आश्चर्य होता है कि ज्ञान फिर भी अज्ञानता को स्वीकार क्यों नहीं कर सकते? अज्ञानता उतके सफ़टो का मोचन करने वाला है। उनके जीवन में सुख करने वाला है फिर भी उससे डरते क्या है?

आन्दोलन के दो पक्ष

पौष्टिक खुराक

अणुव्रत-आन्दोलन लगभग सान वर्षों के बाद देशव्यापी रूप में सामन आ रहा है। जनता ने इस बात को माना है कि आन्दोलन आज के इस युग के लिए पौष्टिक खुराक है। हजारों दृश्य, चान वे जिनत नी मुन्दर कयो न हो आपके सामने आ जाएग, पर क्या उनम आपकी र्गव मिट जाएगी ? भूख नो खाद्य पदार्थ मिलने पर ही मिटेगी। इनी तरह आज देश मे जो चरित्र और नैतिकता की भूख है, उमे मिटाने के लिए नचमुच यह आन्दोलन पौष्टिक खुराक का काम करता है। अभी जब मैं दिल्ली में था, वहा के नेताओ व नागरिको ने इस बात को स्वीकार किया था कि अगर देश में नैतिक कार्य करने वाला कोई आन्दोलन है तो वह अणुव्रत-आन्दोलन है।

यह आन्दोलन एक बहुत बड़ी दार्शनिक भूमि पर टिका हुआ है। जिस प्रकार एक विशाल भवन के लिए मजबूत नीव की आवश्यकता होती है, उसी प्रकार अणुव्रत-आन्दोलन का प्रासाद सत्य और अहिंसा के विशाल और मजबूत खम्भो पर टिका हुआ है।

प्रश्न सामने आता है—अणुव्रत-आन्दोलन समाज व देश के लिए कयो आवश्यक है ? इसके कौनसे ऐसे परिणाम है जो समाज को प्रभावित करते है। समाधान है—यह आस्तिको को, उनकी आस्तिकता पर टिकाये रखता है और यदि कोई नास्तिक है तो उन्हें आस्तिक बनाता है। कोई भी समाज व देश ऐसा हो नहीं सकता, जहा केवल नास्तिक—बर्बर, क्रूर व शोषक व्यक्ति ही हो, पर खेद इस बात का है कि आज केवल आस्तिकवाद की दुहाई

देने वाला तो प्रत्येक मोम मिलने है पर उनके जीवन प्रास्तिकता से कोरे होते है। महज ही यह प्रकृत होता है—क्या नीति और चरित्र की बातें पुस्तकों में ही बन्द रखने की होती हैं? यदि प्रास्तिकता और प्रास्तिकता को प्रकृति तरह से समझना है या उनके वास्तविक रूप का दर्शन करना है तो बर्न को कि पस्तको सम्बन्धों और मठा में बन्द है उसे जीवन में लागू होना। बिना जीवन में उतार केवल प्रास्तिकवाद की बुझाई देने मात्र से क्या होने वाला है। प्रायः हमी चार बर्षोंमात्र पुष्पारी सभी कहते है कि सर्व बहुत प्रकृति है उसे अपने जीवन में लागू बाहिए। सुनने से ऐसा सबदा है उम्ह प्रसत्य से चिड-सी है। बाडी-सी यठराई से देखा जाए तो उनके जीवन को मस्य ने छुपा एक नहीं है। बह बु-ब की बात यह है कि प्रायः सर्व के साथ बिल्कुल हो रहा है। प्रायः प्रास्तिक मोम भी वास्तविक प्रास्तिकता से परे है। प्रगुब्रत-मान्दोलन का पहला पल यही है कि वह व्यक्ति को वास्तविक प्रास्तिकता का दिग्दर्शन कराता है।

प्रत्येक व्यक्ति प्रायः सबसे पहले प्रात्म-द्रष्टा बने धारम-निरीक्षण का पाठ सीखे। अपने आपको देखने के लिए उपवास की आवश्यकता नहीं है। बूझने की दो चार यक्तिया भी जुमठी है और अपने में मात्र यक्तिया भी नहीं के बराबर लगती है। प्रायः की वह सबसे बड़ी कमी है। प्रगुब्रत मान्दोलन का दूसरा पल है कि वह व्यक्ति को प्रात्म-द्रष्टा बनाता है।

कार्यकर्ता बनने की पद्धति

प्रगुब्रत-मान्दोलन की चर्चा बहुत जली। सब समझ इसका समागत हुआ पर कहीं दिये गये धर्मोत्तर' वाली यह उक्ति चरित्रार्थ न हो जाये। यदि कहीं ऐसा हो गया तो वह बहुत बड़ी निराशा की बात होगी। प्रायः इसे सम-बल की आवश्यकता नहीं है। इसे आवश्यकता है—धारमबल और पुस्तकार्य को बनाकर इसके पीछे अपने जीवन मोक देने वाले कार्यकर्ताओं की। यह कमी सभी भी है। प्रायः लोगो को अपने प्राप्तपाठ में ऐसा सुन्दर वातावरण बनाया बाहिए कि प्रत्येक व्यक्ति मान्दोलन के उम्ह स्वों नियमों व कार्यों से प्रकृति तरह परिचित हो जाए। वह बहुत बड़ा कार्य होगा। प्रायः को अपने जीवन

मे इस कार्य को प्रमुख स्थान देना होगा। अपने कार्यों की सूची में इसे भी मान लेना होगा। यदि ऐसा करेंगे तो आप स्वयं कार्यकर्ता बन जाएंगे।

आज यह कहने वाले बहुत से लोग मिलेंगे कि आपने अपनी इस यात्रा में बहुत कठिन परिश्रम किया। बीस-बीस मील का लम्बा विहार किया। पर केवल इन बातों के कहने मात्र से कुछ नहीं होने वाला है। अगर किसी को मेरे प्रति सहानुभूति है तो मेरी जिम्मेदारी में व मेरे कार्यों में हाथ बटाये।

वहिनो को भी यह समझना है कि केवल प्रशंसा की भडी लगा देने से कुछ नहीं होने वाला है। उससे हम खुश होने वाले नहीं हैं। अगर आपको कुछ करना है तो अगुव्रत-आन्दोलन के इस पथ को यथाशीघ्र अरनायें।

कार्यकर्ताओं से दो बातें

दो बातें कार्यकर्ताओं से भी कहूंगा—१ अब केवल मनन, चिन्तन और विचार को छोड़कर साधना में लगे। कहीं विचार और मनन करते-करते प्रज्ञा कु ठित न बन जाए। कार्यकर्ता वही बन सकता है, जो अपनी मस्तिष्क-शक्ति में अधिक पुरुपाथ को काम में लाता है।

आज अपनी भूमि उर्वर हो गई है। अब तो उसमें बीज बोने वाले की आवश्यकता है। अगुव्रत-आन्दोलन के प्रसार में ही सत्य और अहिंसा का प्रसार है।

मैं आपसे यह नहीं कहता कि कार्यकर्ता सब कुछ छोड़कर इस कार्य में लगे। क्योंकि आखिर आप गृहस्थ हैं। पर कुछ समय आनन्दोलन के प्रसार में अवश्य दें।

अगुव्रती कार्यकर्ता केवल प्रवाह में न वह जाए। उन्हें लेभागू की नीति नहीं बरतनी चाहिए। यह नहीं कि कहीं से कुछ भी मिला और उसे अपना लिया। यदि कहीं कुछ ग्राह्य विचार मिलते हैं तो उन्हें लेना चाहिए, पर हर बात की नकल नहीं करनी चाहिए।

कार्यकर्ताओं ने यह अगुव्रती कार्यकर्ता शिक्षण-शिविर रखा। अगर कार्य रूप में परिणत हुआ तो बहुत ही अच्छा है, नहीं तो इस पर चिन्तन हुआ, इसलिए भी अच्छा ही है।

[२ फरवरी ५७ को सरदारगढ़ (राजस्थान) में अगुव्रती कार्यकर्ता शिक्षण शिविर में प्रदत्त मंगल प्रवचन]

अनुग्रह आत्म बुद्धि का साधन

उपदेश देने का अधिकारी कौन ?

यह बात सही है कि कोई भी मनुष्य किसी को जन्तव नहीं बना सकता। हमारी तो यह निश्चित मान्यता है कि स्वयं ईश्वर भी किसी को जन्तव नहीं बना सकता। यह कहकर मैं ईश्वर की प्रशंसा नहीं कर रहा हूँ पर वस्तुस्थिति ही ऐसी है कि मुझे यह बताना ही पड़ेगा। यदि ईश्वर ही किसी को जन्तव या सुखी बना सकता है तो ससार में सुखी और दुःखी दोनों क्यों ? उसे तो सबको सुखी ही सुखी बनाना चाहिये था। पर ससार में अनेक दुःखी भी हैं। ईश्वर तो समझौता है। वह किसी को सुखी या दुःखी बनाएगा ही क्यों ? अतः स्पष्ट है कि अपने मात्म का निर्माता मनुष्य स्वयं ही है। ईश्वर से जो प्रार्थना की जाती है उसका वह स्वयं भी नहीं होता है कि उनसे प्रेरणा प्राप्त की जा सके। ईश-सृष्टि का यदि यह सही अर्थ समझ लिया गया और उसके अनुसार व्यवहार किया गया तो निश्चित ही व्यक्ति अपने कर्तृत्व को बुनियाद के समझ प्रस्तुत कर सकेगा। इसी प्रकार प्रवचनकार भी किसी को जन्तव कर सके यह भी सम्भव नहीं है। वे तो केवल प्रेरणा ही दे सकते हैं। जन्तव तो मनुष्य स्वयं अपने आप होता है। यह सही है कि प्रेरणा देने वाला पहले स्वयं सुखी हुआ हो। नहीं तो फिर उसके उपदेश से प्रेरणा मिले यह कम सम्भव है।

आज बहुत से लोग कहते हैं कि हम समाज की सेवा करना चाहते हैं। यह सही है या नहीं यह तो मैं नहीं कह सकता पर जब तक अपने जीवन को सैसा नहीं बनाया जाएगा जब तक यह कहना भी बेव्यर्थ है। सुचारक होना बहुत छोटी बात नहीं है पर वास्तव में सुखी हुआ होना पीर भी बहुत बड़ी

वात है। इसलिए भारतवर्ष में माना गया है कि उपदेश देने का अधिकार उन्हें ही है, जो पारदर्शी—सर्वज्ञ है। हम भी जो उपदेश देते हैं, वह पारदर्शियों द्वारा बताया गए तत्त्वों के आधार पर ही दे सकते हैं। अन्यथा हमें भी उपदेश देने का कोई अधिकार नहीं है।

अणुव्रत धर्म का आन्दोलन है या नहीं? यह प्रश्न अनेक बार सामने आया करता है। मैं इसका उत्तर दिया करता हूँ—यह धर्म का आन्दोलन है भी और नहीं भी। एक धर्माचार्य के मुँह से ऐसी बात सुनकर सम्भवतः प्रत्येक व्यक्ति चोकेगा, पर मेरा तो सिद्धान्त ही स्याद्वाद जो ठहरा। अतः इस प्रश्न का भी मुझे आपेक्षिक दृष्टिकोण में देखना पड़ेगा। एक अणुव्रती यदि अहिंसक बनता है, झूठ बोलना छोड़ता है, अपरिग्रही बनता है तो यह धर्म ही है। हमारी दृष्टि से यह जैन, बौद्ध, वैदिक और ईसाई आदि किसी एक धर्म विशेष का आन्दोलन नहीं है, अतः यह धर्म का आन्दोलन नहीं भी है। इस दृष्टि से यह नीति का व सदाचार का आन्दोलन है।

धर्म के नाम पर

आज स्थिति कुछ दूसरी है। धर्म का नाम आते ही लोग नाक-भोह सिकोड़ने लग जाते हैं। खेद का विषय है कि जो धर्म अमृत बनकर आया था, उसे आज लोगों ने विष बना दिया है। जो धर्म मनुष्य की आत्मोन्नति का साधन बनकर आया था, उसे आज आत्म-पतन का रास्ता बना दिया गया है। इसीलिए धर्म का नाम आते ही बुद्धिजीवियों के विचार हिल उठते हैं। उसके कुछ कारण भी हुए हैं। किसी को कोई भी काम कराना हुआ, वह सीधे तो होता सम्भव नहीं था, अतः हर काम को धर्म का जामा पहना दिया गया। धर्म के नाम पर खून की नदियाँ बही। धर्म के नाम पर देश का विभाजन हुआ। सती-प्रथा जैसी कुप्रथाएँ भी धर्म के नाम पर प्रचलित की गईं। आज भी धर्म के नाम पर अनेक काम करवाए जाते हैं। यह धर्म को ठीक प्रकार से नहीं समझने का ही कारण है। बहुत से लोग आज भी यही समझते हैं—गुरु का चरणामृत पीने मात्र से ही उनका कल्याण हो जाएगा, पर वास्तव में यह धर्म नहीं है। कल्याण तो तब होने वाला है, जब धर्म-

बुराई के द्वारा बहाए गए मार्ग का अनुसरण किया जाएगा। उन्होंने जो पत्र प्रपनाया है उसे प्रपना पत्र बनाया जाएगा।

धर्म के साथ यह बहुत बड़ा प्रभाव हुआ है कि उसे एक प्रकार के अनिर्धार्य कार्यों में बसीट लिया गया। जिस कार्य को करने से प्रपना काम पत्र उसे ही धर्म मान लिया गया। यह धर्म के साथ प्रकृता भ्रमणहार नहीं हुआ। जो धर्म आत्म-सुखि का साधन या उसे जीवन चलाने का साधन मान लिया गया। व्यापक धर्म से यह कर्तव्य का सार के लिए आवश्यक हुआ है। उसे भी धर्म मान लिया जाता है। उस दृष्टि से फिर हिंसा भी धर्म हो जाएगी। औरधों और पाठकों का युद्ध जो धर्मयुद्ध कहलाना का वह इसका ही परिणाम था। कुछ दृष्टियों से यह परिभाषा चलती है पर वास्तव में तो आत्म-सुखि का साधन ही धर्म है। बड़ा ठगवार करने बड़ा धर्म होगा मान लेना धर्म के वास्तविक धर्म को नहीं समझने का सूचक है।

इसी प्रकार धर्मका की रक्षा से बौद्ध की हिंसा को भी कई लोग सम्य मान लेते हैं। ईसा प्रतिकर हिंसा है। बौद्धों भी हिंसा प्रहिंसा नहीं हो सकती। प्रहिंसा का दृष्टिकोण है कि एक छोटे प्राणी की भी हिंसा न हो। इसीलिए तो साधु थोड़ी-सी हिंसा के प्रसंग पर आत्मोत्सर्ग कर देते हैं। पर हिंसा नहीं करते। राजनीति में यह सब कुछ चलता है। बुद्धिवा तो यह है कि लोग एक ही छाठी से एकको हाकना शुरू कर देते हैं। महा ठग कि कई जनाचार्यों ने भी यह कह दिया है—'बुद्धिग्व चक्रवर्ती सेनामणि सच कज्जम्मि सच को रक्षा के लिए धर्म ही चक्रवर्ती-सेना को नष्ट कर दो यह हिंसा नहीं है। यह उस धर्म की बाणी है जबकि धर्म-सम्प्रदायों में प्रायसी सचर्च चलते थे। अपने सम्प्रदाय और जाति की रक्षा के लिए देखा कह दिया गया था पर यह प्रहिंसा की बाणी नहीं है। वास्तव में तो यह धर्म की रक्षा है ही कहा ? हिंसा के द्वारा जो जाने वाली रक्षा में धर्म तो बहने ही हो चुका। मत उसे धर्म माना ही कैसे आए ? जाहीजी ने भी यह कहा था—प्रहिंसा से धर्म ही सौ बर्षों बाद स्वराज्य मिले यह संभव है पर हिंसा से यदि धर्म भी स्वराज्य मिलता है तो मुझे यह नहीं चाहिए। आत्म-सुखि व साधन-सुखि को मे समान

ही महत्त्व देते थे । इसी प्रकार निर्बल की रक्षा के लिए सबल को मार देना भी धर्म नहीं है ।

आज प्रत्येक बुद्धिवादी को यह सोचना है कि वह धर्म को बुरा नहीं बताए । तथाकथित धर्मात्माओं ने जिन्होंने अपने स्वाथ से धर्म को बदनाम किया, जरूर इसके कारण बने हैं । यह अपने स्वार्थ का ही परिणाम है कि कुछ लोगो ने धर्म को भी जाति विशेष में बाध दिया है । अमुक जाति को ही धर्म का अधिकार है, यह कह कर उन्होंने निश्चय ही धर्म का गला घोटा है । धर्म एक जाति में क्या, सारी मानव जाति में भी नहीं बन्धता । वह प्राणीमात्र के लिए है । क्योंकि धर्म कहीं दूसरी जगह नहीं रहता । वह तो अपनी आत्मा में ही रहता है, अतः किसी को भी उससे वंचित नहीं किया जा सकता । बन्धुओं ! मुझे तभी अत्यधिक प्रसन्नता होगी, जब धर्म में जाति-पाति के भेद-भाव को विलुप्त मिटा दिया जाएगा । जब कोई भी मनुष्य प्रत्येक स्थान को अपना घर मानकर धर्म करने में स्वतन्त्र होगा । अणुव्रत यही काम करना चाहता है । वह धर्म के बाह्य आवरणों को हटाकर उसके निर्मल स्वरूप को सबके समक्ष प्रस्तुत करना चाहता है । उसने कुछ काम किया है और बहुत कुछ करना बाकी है । अतः मैं तो यही कहना चाहूँगा कि प्रत्येक व्यक्ति आन्दोलन की भावना को समझे और अपने जीवन में उतार कर उसे उत्तरोत्तर सफल बनाने का प्रयत्न करे ।

सुधार का सही माध्यम

सुधार में रहने वाला व्यक्ति बहुतकमी होता है। वह बड़ा राजनीति में पढ़ता है बड़ा सामाजिक व नासिक पहलुओं को भी सूँटा है। कूने की अपनी प्रसन्न-प्रसन्न पड़ती होती है। कोई किसी विचार को धागे किये बसता है और कोई किसी विचार को। बाहिर यत्न सब एक है—सुख-खान्ति की प्राप्ति। वह सबको प्रसीष्ट है और उसे पाने के लिए लोग प्रत्येक तरह की प्रवृत्तियों का सहायता करते हैं। हमें व राजनैतिक क्षेत्र को सूँटा है व प्रासिक क्षेत्र को। हमारा बुना हुआ अन्न भाष्यात्मिक नैतिक या चारित्रिक है। बिछे हुए को उठाए, उठाने में प्र रक बनें सातव-सात के जीवन को उठा उठाने के लिए कोई व्यवस्थित रूपरेखा सामने रखें। इसी भावना का मूर्त रूप प्रगुहव प्राप्तिम है।

ये तीन विचार जहा नहीं आये है, वहा मनुष्य अपने आपको नहीं पहचानता। समाज सुधार के और राष्ट्र-सुधार के कानून बनते है, पर अपनी आत्मा को समझे बिना उनसे बनने का क्या है ? मैंने बम्बई प्रान्त मे देखा— वहा मद्य-निषेध का कानून है, पर फिर भी वहा लोग खुलेआम शराव पीते हैं। कारण यही कि कानून बुराई छोडने के लिए जोर डालता है, किन्तु बुराई के प्रति घृणा पैदा नहीं करता। बुराई के प्रति घृणा का सस्कार बन जाए तो वह टिक भी नहीं सकती। वह आज खत्म होगी या कल खत्म होगी, आखिर खत्म होकर रहेगी। अत बुराइयो को मिटाने के लिए सस्कार-परिवर्तन या हृदय-परिवर्तन का प्रयास हो तो वह बुराई जड-मूल से मिट सकती है। अपने आपको समझने और पहचानने का प्रयास होगा तभी कुछ बनने का है।

युग प्रगति का है। लोग एक साथ सारी दुनिया को सुधार डालना चाहते हैं। उनके हृदय मे मगलकामना है, पर सुधार का सही माध्यम व्यक्ति-सुधार ही है। अगुव्रत-आन्दोलन व्यक्ति-सुधार को प्रमुखता देकर चलने वाला एक चरित्र-शुद्धिमूलक रचनात्मक आन्दोलन है। उदाहरण के रूप मे एक कहानी है। एक अध्यापक ने विद्यार्थियो को एक नक्शे के कई विभक्त खण्ड, जिसके एक ओर दुनिया तथा दूसरी ओर मनुष्य शरीर की आकृति अंकित थी, दिया और कहा कि इसे फिर से व्यवस्थित करो। विद्यार्थी उसे जोडने के लिए दुनिया के नक्शे को ठीक करने लगे। वे दुनिया से अपरिचित ठहरे। अफ्रीका को ठीक बैठाया तो अमेरिका अव्यवस्थित हो गया और अमेरिका को ठीक किया तो एशिया अस्त-व्यस्त हो गया। अध्यापक ने सबको समझाते हुए कहा कि पहले आदमी को बनाओ, दुनिया का नक्शा स्वत बन जायेगा। विद्यार्थी आदमी के शरीर के सारे अवयवो से परिचित तो थे ही, नक्शे को शीघ्रता से व्यवस्थित किया। कागज के पीछे दुनिया का नक्शा स्वत ठीक बन गया। इस तरह विश्व के निर्माण से पहले मानव का निर्माण होगा, तभी कार्य ठोस और क्रियाशील बन सकेगा। अत अगुव्रत-आन्दोलन की गति व्यक्ति-सुधार के माध्यम से बढ़ने की है तथा उसी दिशा मे वह आगे बढ़ रहा है।

भारत स्वतन्त्र हुआ है। शिक्षा, कला और विज्ञान के क्षेत्र मे प्राशातीत विकास हो रहा है। इन क्षेत्रो मे विकास हो रहा है तो क्या आत्मा और

चरित्र के क्षेत्र में उल्लास की आवश्यकता नहीं है ? आत्मा के सुचारु का अपने आप के सुचारु का जहाँ प्रबल आता है जहाँ प्रायः व्यक्ति पीछे खिसक जाता है । किन्तु यह हानि नहीं चाहिये । इससे सुचारु की बातें बाँधी बन जाती है । उनका बरतन ही खिसक जाता है । निर्मास्य का प्रबल तो बीस ही बन जाता है और उन पर आबन्धन आ जाता है ।

सुचारु के सामन वृत्त है । वृत्त में महती शक्ति है । उनका विकास हुए बिना सुख और शांति का मार्ग प्रशस्त नहीं हो सकता । क्या मैं माघा कह कि भोज भारतीय परम्परा के अनुसार वृत्त-व्यक्ति को बढाएँगे और अपने जीवन को विकास की ओर ले जाएँ ?

[११ अगस्त १९५६ को मुम्बई-राज्य (राजस्थान) में अणुवृत्त प्रयोग विषय के उपसभ में प्रवृत्त प्रवचन]

सर्वोदय और अणुव्रत

सर्वोदय और अणुव्रत दोनों ही शब्द बहुत प्राचीन हैं। सर्वोदय शब्द का सर्वप्रथम जैन आचार्यों ने प्रयोग किया था। आचार्य ममन्तभद्र ने अपनी वीतराग स्तुति में भगवान को सम्बोधन करते हुए कहा है—

‘सर्वापदामन्तकर निरन्त सर्वोदय तीर्थमिद तवैव’।

‘हे प्रभो ! सब आपत्तियों का या सबकी आपत्तियों का अन्त करने वाला यह आपका ही सर्वोदय तीर्थ है। तीर्थधाम में आया हुआ जानकर जैसे व्यक्ति अपने आपको सुरक्षित मानता है, उसी तरह यह आपका तीर्थ है।’ इस प्रयोग से सर्वोदय शब्द की प्राचीनता स्पष्टतः प्रमाणित होती है। अणुव्रत शब्द का उल्लेख भी जैन शास्त्रों में म्यान-स्थान पर आया है।

दोनों शब्द पुराने हैं, पर दोनों का ही इस रूप में प्रयोग नया है। पहले सर्वोदय और अणुव्रत—ये दोनों शब्द केवल एक विशेषण के रूप में प्रयुक्त होते थे और आज एक विशेष्य के रूप में प्रयोग में आते हैं। पहले अणुव्रत-धम केवल श्रावकों से सम्बन्धित था, अब वह मानव-मात्र के लिए न्याय का पथ बन गया है। शब्द वे ही हैं, पर प्रयोग में नवीनता है।

सर्वोदय की भावना है—सब का उदय। ‘सर्वे भवन्तु सुखिन सर्वे सन्तु निरामया’ सब सुखी हों, सब निभय (स्वस्थ) हों—यह कितनी विशाल और व्यापक भावना है। किसी व्यक्ति, परिवार, समाज या राष्ट्र का ही नहीं, बल्कि सबका बिना किसी भेदभाव के उदय हो। सबके उदय के लिए सब अग्रसर हों, फिर उदय की परिधि को सीमित क्यों किया जाए ? सर्वोदय शब्द में भी व्यापकता है। वह उदय उदय नहीं, जिसमें अपना उदय और दूसरों का तिरोभाव हो। वह उदय भी उदय नहीं, जिसमें अपना उदय भूल कर दूसरों के

ही उदय की सम्पत्ति है। एक संस्कृत कवि ने सूर्य को सम्बोधित करते हुए कहा है—

ठिमिर झहरी गुर्धोमुषी करोतु विकस्वरा ।
हरणु नितरा निद्रा मुद्रा मरणात् गुण्णिनी गणात् ।
तद्यपि तरन्ते ! तेव पुषो न मे तव रोचते ।
किमपि तिरमन् उमोतिरवचन स्वभाति मिभूमिमत्तम् ।

सूर्य । तेरा यह तेज पुत्र किसी को खिचकर लमटा होगा पर मुझे तो यह भ्रष्टा नहीं लगता । गहरी निद्रा के अन्धेर को मिटाकर भूतल को प्रकाश करता है रात में बहरी निद्रा में सोये हुएों को तू जागृत करता है । तू उपकारी है पर तो भी तू मुझे भ्रष्टा नहीं लगता । अन्धरा को नहीं साबो टिमटिमाते तारों और बीचों बीचों को तू उबस होते ही भरत कर देता है । अपनी तेज किरणों को प्रसारित कर तू अपनी जाति को लक्ष्य कर देता है । इसलिये सूर्य । तू मुझे भ्रष्टा नहीं लगता ।

जब तक सबकी भाषाबाषो का अन्त नहीं हुआ तब तक सर्वोदय नहीं । सर्वोदय के सेवकों का कहना है—सर्वोदय यानी अन्तबोधय—गिरे हुएों का भी उदय । उनकी दृष्टि में सर्वोदय में बाधक तत्त्व ये हैं —

१ जातिवाद

२ अमीकों को नीचा समझने की भावना

३ हिंसा परिहृह और पचावसम्बत

१ जातिवाद—जातिवाद सर्वोदय में इतना बंधक है कि उससे उच्चता और नीचता की भावना बनती है । जैसे ही वह परम्परा कमी भण्ठी और हित कर मानी जाती रही होनी पर नीचता और उच्चता की भावना बनाने में जातिवाद का बहुत बंध हान्य रहा है इससे ह्मकार नहीं किया जा सकता । बिल उच्छ पू भीवाद का अन्त करना चाहते हैं, पर पू भी का नहीं उन्नी उच्छ जाति वाद का अन्त करना चाहते हैं न कि जातियों का ही । तब पू भी और जातिवा केवम भावस्वकता की वस्तुभाव र्णु कार्येगी । ऐसा उन्का कहना है और वह ठीक भी लगता है ।

२ अम को नीचा समझने की भावना—अम को नीचा समझने की

सर्वोदय और अणुव्रत

भावना भी सर्वोदय में बाधक है। बड़े-बड़े पूजापति उठकर पानी भी पीना नहीं चाहते, क्योंकि श्रम को नीचा समझा जाने लगा है। अपना काय अपने हाथ से करना भी हीनता का सूचक हो गया है। पूजापति श्रमिकों से काम लेकर उन्हें नीचा भी समझने लगे हैं। इससे स्पर्धा की भावना को बल मिलता है। प्रत्येक कार्य में ईश्वर कर्तृत्ववाद की मान्यता की तरह यहाँ पर भी कम-वाद का अवतरण होने लगा। पूजापतियों से भट सुनने को मिल सकता है कि धनवान् और गरीब होना तो सब अपने-अपने कम के अधीन है। यद्यपि कम-वाद भी एक सीमा तक मान्य है, पर कम करने वाला व्यक्ति स्वयं ही होता है। कर्म व्यक्ति को नहीं बनाता, बल्कि व्यक्ति कम को पैदा करता है। कोई व्यक्ति गठरी सर पर रखेगा, तब गठरी सर पर आयेगी, अपने आप तो नहीं। नीचे कुल में जन्मा हुआ भी लाखों व्यक्तियों का पूज्य बन सकता है। हरिकेशी मुनि चण्डाल के घर जन्मे थे, पर वे करोड़ों के पूज्य बने। उच्च-नीच की विवक्षा जाति के आधार पर नहीं, गुणवाद से होनी चाहिए। जब तक श्रम को आदर नहीं मिलेगा, श्रमिक को नीचा माना जायेगा तब तक सर्वोदय नहीं हो सकता।

३ हिंसा, परिग्रह और परावलम्बन—हिंसा, परिग्रह और परावलम्बन भी सर्वोदय में बाधक हैं। एक दूसरे को मारने उत्तप्त करने व पीड़ित करने में सर्वोदय नहीं है। परिग्रह से भी विषमता बढ़ती है और परावलम्बन में दूसरों के श्रम पर जीवित रहना पड़ता है। इसलिए ये तीनों सर्वोदय के बाधक हैं।

अणुव्रत की भावना है—सब आपदाएँ व्रतों से मिट सकती हैं। भोग में सब समान नहीं हो सकते। त्याग में सब समान हो सकते हैं। साम्यवादी व्यवस्था में भी भोग समान नहीं होते। वहाँ भी उनमें न्यूनाधिक्य रहता ही है। कोई व्यक्ति उपवास करना चाहता है, ब्रह्मचारी रहना चाहता है, तब दूसरे भी वैसा बनना चाहें तो बन सकते हैं। भोग में वैसा नहीं है। आत्मा से लालसा छूटे, भोग से मन हटे—यही वास्तव में व्रत का स्वरूप है। ऐसे व्रतों से सब आपत्तियों का नाश हो सकता है, ऐसा मेरा विश्वास है। लोग दान की बात करते हैं, शोषण नहीं छोड़ते। उससे बुराई का मार्ग रुकता नहीं है।

बुनियादों में समता धार्ये बिना दान से क्या बन ? समता का भार्ये त्याग है। इसलिये दान की नहीं त्याग की बुनियादों की आवश्यकता है। वही समाज में शोषण और विकास नहीं होता। इसलिये श्रम और स्वावलम्बन अपने आप में आयना। बड़ा परिणाम की आवश्यकता नहीं होती। इसलिये आतिवाह अपने आप मिट जायगा। बड़ा नृणा नहीं रहेगी। इसलिये श्रमिक भी नीचा नहीं कर लायगा। इस तरह प्रसुद्ध सर्वोद्यम की पृष्ठभूमि है। दूसरे शब्दों में यह भी कहा जा सकता है कि प्रगुदथ द्वारा भूमि निर्मास होने पर सर्वोद्यम अपने लक्ष्य के निकट शीघ्रता से जा सकता है। अहिंसा सत्य और अपरिग्रह पर तो होने का बल है ही। दोनों की कार्य पद्धतियों और रूप में भेद है पर भावना और प्रथम दोनों का एक है। दो जोत है पर दोनों आगे जाकर एक बराबर पर मिल जाते हैं।

दोनों साम्यवादी के कार्यकर्ताओं को दोनों विचारधाराओं का सहृदय से अध्ययन करना चाहिए। आज अहिंसक शक्तियों के मिसने की बहुत बड़ी आवश्यकता है। अगर वे मिलकर सहयोग की भावना से कार्य करें तो विश्व का बहुत बड़ा ससा हो सकता है।